पूर्वोत्तर की लोककथाओं में ‘जेंडर’

(POORVOTTAR KI LOK-KATHAON MEIN GENDER / GENDER IN FOLKTALES OF NORTH-EAST)

A thesis submitted to the University of Hyderabad in partial fulfillment of the requirements for the award of the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

Hindi

By

SETU KUMAR VERMA

(Reg. No. 16HHPH10)

Under the Supervision of

Prof. Alok Pandey

हैदराबाद विश्वविद्यालय
University of Hyderabad

प्रतिष्ठित संस्थान
INSTITUTION OF EMINENCE
राष्ट्रीय अपेक्षाएँ, वैश्विक मानक
National Needs, Global Standards

Department of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
Hyderabad-500046
Telangana
India

January, 2023

पूर्वोत्तर की लोककथाओं में 'जेंडर'

हैदराबाद विश्वविद्यालय की

पीएच.डी. (हिंदी)

उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबंध

शोधार्थी

सेतु कुमार वर्मा

16HHPH10

शोध निर्देशक

प्रो. आलोक पाण्डेय

विभागाध्यक्ष

प्रो. गजेन्द्र पाठक

Department of Hindi
School of Humanities
University of Hyderabad
Hyderabad-500046
Telangana
India

January, 2023

DECLARATION

I, Setu Kumar Verma hereby declare that this thesis entitled **पूर्वोत्तर की लोककथाओं में 'जेंडर' (Poorvottar Ki Lok-Kathaon Mein Gender / Gender In Folktales Of North-East)** Submitted by me under the guidance and supervision of Professor Alok Pandey, Is an original and bonafide research work and is free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date : 31-01-2023 | SETU KUMAR VERMA
Place- Hyderabad | Reg. No. 16HHPH10

School of Humanities
University of Hyderabad

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **पूर्वोत्तर की लोककथाओं में 'जेंडर' (Poorvottar Ki Lok-Kathaon Mein Gender / Gender In Folktales Of North-East)** submitted by Setu Kumar Verma bearing Registration Number 16HHPH10 in partial fulfilment of the requirements for award of **Doctor of Philosophy** in the School of Humanities is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

As far as I know, this thesis is free from Plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Further, the student has the following publication before submission of the thesis for adjudication and has produced evidence for the same in the form of acceptance letter or the reprint in the relevant area of his research:

1. पूर्वोत्तर भारत : नामकरण की पृष्ठभूमि (Poorvottar Bharat : Namkaran Ki Prishthbhumi), International Journal of Social Science and Humanities (An Indexed, Refereed and Peer Reviewed Journal) Online ISSN: 2664-8628, Print ISSN: 2664-861X, Impact Factor: RJIF 8, Volume 4, Issue 2, Year 2022, appears in Chapter 1.

and

has made presentations in the following conferences:

1. 'भिन्नता के सहस्तित्व का प्रश्न एवं पूर्वोत्तर भारत' (Bhinnata Ke Sahastitva Ka Prashn Aur Poorvottar Bharat), National Seminar - 'Harmony And Unity In Indian Languages And Literature' (Centre For Dalit And Adivasi Studies And Translation, School Of Humanities, University Of Hyderabad, Hyderabad), 08-09 March, 2019.
2. 'पूर्वोत्तर की लोककथाओं में जेंडर दायित्व' (Poorvottar Ki Lokkathaon Mein Gender-Dayitva', Name Of National Seminar – 'Bhartiya Janjatiyon Ke Aitihasik Aur Sanskritik Aayam' (Department Of Hindi, University Of Hyderabad), 09-08-2019.

Further, the student has passed the following courses towards fulfilment of coursework requirement for Ph.D.

Course Code	Name	Credits	Pass/Fail
HN801	Critical Approaches to Research	4	Pass
HN802	Project Work - Research Paper	4	Pass
HN826	Ideological Background of Hindi Literature	4	Pass
HN827	Practical Review	4	Pass

Prof. Alok Pandey
Research Supervisor
Department of Hindi
University of Hyderabad

Prof. Gajendra Pathak
Head, Department of Hindi
University of Hyderabad

Prof. V. Krishna
Dean, School of Humanities
University of Hyderabad

अनुक्रमणिका

अध्याय पृष्ठ संख्या

भूमिका **i-vii**

अध्याय 1. विषय परिचय **1-67**

1.1 पूर्वोत्तर : नामांकरण की पृष्ठभूमि

1.2 पूर्वोत्तर : अध्ययन की प्रासंगिकता

1.3 पूर्वोत्तर : भौगोलिक एवं सामाजिक परिचय

1.4 पूर्वोत्तर की सामाजिक स्थिति

1. 5 लोक एवं लोककथा

1.6 जेंडर : अवधारणा और इंटरसेक्शनल नारीवाद (Intersectional feminism)

अध्याय 2. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में स्त्री-पुरुष 'सत्ता संबंध' (Power Relation) **68-95**

2.1 सत्ता का समीकरण और 'जेंडर'

2.2 विभिन्न जेंडर के बीच शक्ति का बंटवारा

अध्याय 3. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में 'जेंडर-दायित्व' (Gender Role) 96-113

3.1 लोककथाओं में अभिव्यक्त 'जेंडर दायित्व' के निर्धारण की प्रक्रिया

3.2 लोककथा में अभिव्यक्त विभिन्न 'कार्यस्थल' (Space) में जेंडर

अध्याय 4. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में निर्णय की प्रक्रिया (Decision Making) **114-132**

4.1 निर्णय की प्रक्रिया में विभिन्न जेंडर की भूमिका

अध्याय 5. पूर्वोत्तर की लोककथाओं का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष 133-159

5.1 लोककथाओं में अभिव्यक्त समाज एवं जेंडर

5.2 लोककथाओं में अभिव्यक्त संस्कृति एवं जेंडर

उपसंहार 160-172

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची 173-184

परिशिष्ट 185-191

भूमिका

पूर्वोत्तर भारत एक ऐसा क्षेत्र है जो सांस्कृतिक, सामाजिक, भाषिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक रूप से बेहद समृद्ध एवं महत्वपूर्ण है। भारत के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि यह एक विविधतापूर्ण देश है, उसी तरह पूर्वोत्तर भारत भी बेहद विविधतापूर्ण क्षेत्र है। किन्तु शेष-भारत के लोग अभी भी पूर्वोत्तर के बारे में प्रायः अनभिज्ञ हैं। साथी नागरिक के बारे में ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक अनभिज्ञता किसी व्यक्तिसमूह के लिए सकारात्मक नहीं मानी जा सकता है। यह शोध-कार्य हिंदी अकादमिक विमर्श एवं उनके जनमानस को पूर्वोत्तर के लोक, संस्कृति, मुद्दों, अपेक्षाओं एवं आकांक्षाओं के कुछ बिन्दुओं से अवगत कराने का प्रयास है।

पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग से "मैथिली एवं खासी लोककथाओं में स्त्री" विषय पर एम.फिल. करने के दौरान पूर्वोत्तर के अन्य ट्राइबल समुदायों की लोककथाओं में मेरी रूचि बढ़ी। पूर्वोत्तर भारत की लोक-संस्कृति की समृद्ध परंपरा एवं वर्तमान सन्दर्भों में उनके सामाजिक प्रभाव को समझने की जिज्ञासा ने इस शोध-कार्य के मूल शोध-प्रश्न को जन्म दिया। पिछले शोध-कार्य में मैंने मैथिली एवं खासी लोककथाओं में स्त्री की भूमिका का अवलोकन किया था। उसे विस्तार देते हुए हमने 'जेंडर' के परिप्रेक्ष्य में पूर्वोत्तर के आओ, आदी, खासी और मिज़ो लोककथाओं के अवलोकन का निश्चय किया।

'अध्याय 1. विषय परिचय' में शोध-विषय के विभिन्न पक्षों के परिचय के साथ-साथ उनका सैद्धांतिक विवेचन किया गया है। पूर्वोत्तर के नामकरण की पृष्ठभूमि, पूर्वोत्तर की

ऐतिहासिक, भौगोलिक, राजनीतिक, एवं सांस्कृतिक परंपरा का विश्लेषण किया गया है। इसके साथ-साथ लोक, लोककथा, एवं जेंडर की अवधारणा का विश्लेषण दिया गया है।

इस शोध कार्य के आरंभ में हमारी शोध-दृष्टि पश्चिमी नारीवाद पर आधारित जेंडर-विमर्श के बहुप्रचलित शोध-प्रविधि से प्रभावित थी। किन्तु पूर्वोत्तर भारत के ट्राइबल समुदायों की लोककथाओं के जेंडर के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन के दौरान 'इंडीजीनियस फेमिनिज्म' अर्थात आदिवासी नारीवाद की आवश्यकता और महत्व से अवगत होने के बाद इस शोध कार्य में 'इंडीजीनियस शोध-प्रविधि' को समाहित करना अनिवार्य हो गया। इस अध्याय में बगेले चिलिसा के विचारों से सहमत होते हुए शोध-कार्य में इंडीजीनियस शोध-प्रविधि' (Indigenous Research Methodology) का उपयोग किया गया। इस विचार ने हमें यह समझाया कि किसी ट्राइबल/आदिवासी समाज पर शोध करते हुए हम बाहरी, विशेष रूप से पश्चिमी विचारों को थोप नहीं सकते हैं। इन समाजों की अपनी समृद्ध संस्कृति एवं व्यापक जीवनदृष्टि है। उनका अध्ययन उनकी नज़र से करना आवश्यक है।

'अध्याय 2. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में स्त्री-पुरुष 'सत्ता संबंध' (Power Relation)' में हमने सत्ता की अवधारणा को समझते हुए पूर्वोत्तर की लोककथाओं में स्त्री और पुरुष के बीच सत्ता संबंध का अध्ययन किया है। साथ ही सत्ता के समीकरण में जेंडर की स्थिति एवं विभिन्न जेंडर में शक्ति के बंटवारे का अध्ययन भी किया गया है।

'अध्याय 3. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में 'जेंडर-दायित्व' (Gender Role)' में 'जेंडर दायित्व' के विचार को समझते हुए पूर्वोत्तर की लोककथाओं के माध्यम से अध्ययन किया गया है। इस अध्याय में लोककथाओं में जेंडर-दायित्व के निर्धारण की

प्रक्रिया और इन कथाओं में अभिव्यक्त विभिन्न कार्यस्थल अर्थात 'स्पेस' में जेंडर कैसी भूमिका निभा रहा है, का अध्ययन किया गया है।

'अध्याय 4. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में निर्णय की प्रक्रिया (Decision Making)' में निर्णय की प्रक्रिया को समझते हुए पूर्वोत्तर की लोककथाओं में जेंडर और इसके प्रभाव का अध्ययन किया गया है। यह अध्याय इस प्रक्रिया में विभिन्न जेंडर की भूमिका की पड़ताल करता है।

'अध्याय 5. पूर्वोत्तर की लोककथाओं का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष' में हमने पूर्वोत्तर के चार आओ, आदी, खासी और मिज़ो समाजों की अध्ययित लोककथाओं के सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष का अध्ययन किया है। यह अध्याय लोककथाओं में अभिव्यक्त समाज और उसकी अपेक्षाओं, आकाँक्षाओं और मूल्यों का अवलोकन करता है। साथ ही पूर्वोत्तर की संस्कृति के विविध तत्वों और उनकी जेंडर संबंधी निर्देशों एवं अपेक्षाओं का अध्ययन भी किया गया है।

एक गैर-आदिवासी, गैर-पूर्वोत्तरवासी पुरुष शोधार्थी होने के नाते इस अस्वीकरण की आवश्यकता है कि भले ही मैं पिछले आठ सालों से पूर्वोत्तर भारत की लोककथाओं पर शोध-कार्य कर रहा हूँ एवं पूर्वोत्तर के लोगों से गहराई से जुड़ा हुआ हूँ, लेकिन मेरे जीवन का अधिकाँश समाजीकरण पूर्वोत्तर के ट्राइबल परिवारों के समाजीकरण जैसा नहीं रहा है, इसलिए अगर अपने शोध-कार्य में अनचाहे या अपनी कमजोरी से मैंने कहीं अन्यथाप्रस्तुति (Misrepresentation) की हो तो उसके लिए अग्रिम क्षमाप्रार्थी हूँ।

मैं इस शोध-कार्य को पूरा कर पाने के लिए अपने शोध निर्देशक प्रो. आलोक पाण्डेय के अटूट अकादमिक, मानसिक और भावनात्मक सहयोग का हमेशा आभारी रहूँगा। शोध कार्य के अंतिम वर्षों के दौरान मैं कुछ व्यक्तिगत जिम्मेदारियों में यूँ उलझता चला गया कि एक समय अपनी अकादमिक यात्रा का भविष्य धुंधला दिखने लगा, ऐसे में मेरे शोध निर्देशक ने न सिर्फ मेरा हाथ थाम कर भरोसा दिया कि मैं सब कुछ कर सकता हूँ बल्कि उन्होंने उस समय भी मुझपर अपना भरोसा बनाये रखा जब मैं खुद पर भरोसा करने से कतरा रहा था। इस शोध कार्य में उनकी भूमिका के लिए शुक्रिया कहना कभी पर्याप्त नहीं हो सकता। उनके अटूट साथ ने मुझे जैसी मानसिक तसल्ली दी है उसका असली महत्व मेरा मन जानता है।

मेरे शोध समिति के सदस्य प्रो. सच्चिदानंद चतुर्वेदी एवं डॉ. आत्माराम ने मेरे ऊपर लगातार अपना विश्वास बनाये रखा। मेरी व्यक्तिगत परेशानियों में वे हमेशा सहृदयता के साथ उपस्थित रहे। मैं उनके सहयोग एवं सुझावों शुक्रगुजार हूँ।

शोध छात्र-प्रतिनिधि की जिम्मेदारी निभाते समय हिंदी विभाग के अध्यक्ष प्रो. गजेन्द्र पाठक के साथ नजदीक से काम करने का अवसर मिला, उन्होंने विद्यार्थियों के हित में प्रस्तुत प्रश्नों का यथासंभव सकारात्मक समाधान निकाला। इसके साथ ही अकादमिक एवं व्यक्तिगत रूप से मुझे हमेशा प्रेरित किया। मुश्किल समय में विभाग की तरफ से आश्वस्त रख कर मुझे जैसा सहयोग दिया उसके लिए मैं हमेशा शुक्रगुजार रहूँगा।

हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अधिकांश प्राध्यापकों ने मुझे हमेशा सहयोग एवं स्नेह दिया। डॉ. भीमसिंह के साथ अनगिनत वैचारिक-अकादमिक बातचीत उनके सुझाव एवं चाय-नाश्ते के ट्रीट का दिल से शुक्रिया। दलित आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केंद्र के कार्यक्रमों के आयोजन के दौरान प्रो. विष्णु सरवदे के साथ काम करना बेहद सुखद रहा। मुझपर विश्वास रखने के लिए उनका दिल से शुक्रिया।

हैदराबाद विश्वविद्यालय के अन्य विभागों के प्राध्यापकों से भी मुझे वैचारिक एवं भावनात्मक सहयोग मिलता रहा। (आची) रिकेन गोमले ने तो अपने छोटे भाई की तरह प्यार दिया और अपने परिवार का हिस्सा बना लिया। डॉ. सौम्या देचम्मा एवं प्रो. ग्रेस को दिल से शुक्रिया।

इस शोध कार्य के दौरान पूर्वोत्तर के तमाम प्राध्यापक, विचारक, विद्वान, लोक कलाकारों, विभिन्न संस्थानों के कर्मचारियों का जितना भी शुक्रिया कहा जाए कम ही होगा। मैं प्रो. तेम्सुला आओ का आभारी हूँ। उन्होंने मेरे आग्रह पर साक्षात्कार के लिए पर्याप्त समय दिया, उनसे हुई बातचीत ने मेरी समझदारी बढ़ाने में बेहद मदद की। उनका जाना हम सबके लिए एक बड़ी क्षति है। मैं प्रो. लूसी जेहोल के समय और मार्गदर्शन का शुक्रगुजार हूँ। “Be the Boulder” - पहाड़ी नदी में अचानक आए बाढ़ के प्रकोप को थोड़ा कम करने वाले चट्टानों की तरह बनने की उनकी सलाह को अपने जीवन में उतारने की कोशिश करता रहूँगा।

मैं हैदराबाद विश्वविद्यालय के तमाम कर्मचारियों विशेष रूप से सफाई एवं मेस कर्मचारियों का शुक्रगुजार हूँ जिन्होंने हमें एक बेहतर माहौल में काम करने का अवसर प्रदान किया। मैं इंदिरा गाँधी मेमोरियल लाइब्रेरी हैदराबाद, सेन्ट्रल लाइब्रेरी नेहू एवं उनके कर्मचारियों को विशेष धन्यवाद देना चाहता हूँ, यहां शोध सामग्री संकलन और अध्ययन-लेखन के लिए मिले स्पेस ने शोध कार्य को पूरा करने में बड़ी भूमिका निभाई। जेआरएफ के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का बहुत शुक्रिया।

हमारे समाज में इस उम्र तक विद्यार्थी रहना बहुत बड़ा फैसला होता है। इस फैसले में बचपन से लेकर अबतक मेरा परिवार जिस तरह मेरे साथ खड़ा रहा उससे बहुत ताकत मिली है। माँ प्रतिमा कुमारी ने हिम्मत सिखाई, दोस्ती निभाई, पिता लक्ष्मीश्वर प्रसाद वर्मा ने बेहतर इंसान कैसा होता है अपने सतत व्यवहार से दिखाया, भाई आकाश वर्मा ने जीवन के सबसे कमज़ोर पलों में हर बार हाथ थाम कर डूबने से बचाया, आज जो कुछ हूँ भाई की वजह से हूँ क्योंकि मेरे हिस्से का मेहनत भाई ने किया तब आज यहां तक की यात्रा कर पाया हूँ। भाभी शालिनी शर्मा ने अपने अंदाज़ में आगे बढ़ते रहने के लिए प्रेरित किया। प्यारे आयु ने वर्तमान और भविष्य को प्यार और रौशनी से भर दिया।

बड़े मामा-अशोक कुमार, भाईजी मामा-डॉ दिलीप कुमार, काकू-निखिलेश्वर प्रसाद वर्मा, बहिन-समृद्धि शालिनी, सारथि, निशु एवं परिवार अन्य सभी सदस्यों का दिल से आभारी हूँ, इन्होने लगातार मेरी खोज-खबर ली और पीएचडी के दवाब और जीवन के अवसाद से लड़ते रहने का भरोसा दिया।

मुझे कुछ बेहतरीन दोस्तों का साथ मिला है। उन्होंने मेरे जीवन और मुझे बेहतर बनाने में बेहद महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोग कहते हैं कि दोस्ती एक ऐसा रिश्ता है जिसे हम चुनते हैं लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि जीवन में एक लम्बे समय तक मेरी तमाम कमजोरियों के बावजूद मेरे दोस्तों ने मुझे चुना और तब तक डटे रहे जब तक मैं भी एक ईमानदार दोस्त नहीं बन गया। इन सभी सुंदर इंसानों का दिल से शुक्रिया। मेरी जिन्दगी में निक्कू-सुकांत सुमन की भूमिका के लिए शुक्रिया कहना कभी पर्याप्त नहीं हो सकता, पिछले तेरह सालों में उसने मेरे हर दुःख-सुख, हार-जीत, और अनगिनत बार दिल टूटने पर साथ निभाया है। मेरे नस-नस से वाकिफ इस दोस्त के सामने सच्चा रहे बिना कोई गुजारा नहीं है। पीएचडी के अंतिम महीनों में रोज़ “ग़म की रात कब बीतेगी” मीम भेज कर निक्कू ने जिस तरह से प्रोत्साहित किया है वह अपने आपमें काफी विवादस्पद माना जा सकता है लेकिन मैं तो शुक्रगुजार हूँ उसकी हर भूमिका का।

दोस्त प्रवीन्द्र शेखर शकुन्त की दोस्ती ने न सिर्फ सामाजिक न्याय और वैचारिक प्रतिबद्धता के प्रति मेरी समझदारी को मजबूत बनाया साथ ही हमने विश्वविद्यालय कैंपस में मिलकर वैश्विक महामारी के लॉकडाउन की एकांत-उदास समय से लेकर हंसी-मजाक भरे बेहतरीन लम्हों को जिया। उसके साथ के बिना यह सफ़र बहुत मुश्किल होना था। मुझपर विश्वास करने और मुझे अपना दोस्त बनाने के लिए मैं प्रवीन्द्र का शुक्रगुजार हूँ। मित्र डॉ आज़ाद को मैंने बहुत परेशान किया लेकिन दोस्त ने हमेशा साथ दिया।

जब हैदराबाद आया तो अपने दूसरे घर पूर्वोत्तर की भयानक कमी महसूस होती थी। थोड़े समय बाद बाबा-हमारी जमातिया से दोस्ती हुई और उनकी दोस्ती ने जिन्दगी की एक बड़ी कमी को दूर कर दिया। मेरे कुर, कोंग- एवानजलिन करीना नोंग्ख्लाव ने खद्दोह-नारी नोंग्ख्लाव और बाह-हार्वी दिएन्दोह के साथ ने एक ऐसा सपोर्ट सिस्टम दिया कि पीएचडी के अंतिम समय के दवाब को झेल पाया। उनका साथ घर जैसा है।

मेरी दोस्त ओमेम पादुंग का शुक्रिया, उनके माध्यम से मैंने जो रिश्ते बनाये वे मेरे लिए बेहद ख़ास है। आने आयी ने अपने बेटे की तरह अपनाया, फिल्ड वर्क के दौरान ओमांग दी, भाई कातेम पादुंग, थाई पादुंग और तागम पादुंग का बहुत सहयोग मिला। मेरी

दो प्यारी बहनें मुमताक जोमयांग और डॉ यागम आदो हमेशा मेरा साथ और मुझपर विश्वास करती रहीं।

ग्रू-आकाश कुमार और मन्नू-डॉ मनोज गुप्ता का साथ लगभग एक दशक से मिल रहा है, पीएचडी के दौरान भी उन्होंने बहुत प्रेरित किया। दोस्त-डॉ कुमार सौरभ ने पीएचडी दाखिले और हैदराबाद में प्रवास की शुरुआत को बेहद सुगम बना दिया, दिल से आभारी हूँ।

कॉमरेड- डॉ टेरेसा खज्वल ने ताने मार-मार के पीएचडी पूरी करवाई। बुले-वाहिदा परवेज बिशी-विशिता मजुमदार, अमनी-मनिजिया बसेना के सहयोग के लिए दिल से शुक्रिया।

मैं उन खास लोगों को याद करना चाहता हूँ जो मेरी जीवन यात्रा में मेरे दिल के बेहद करीब रहे लेकिन मेरी पीएचडी की यात्रा पूरी होने से पहले ही हमें छोड़ कर चले गए। नम आँखों से नानी-माँ, काकी, पीसी-माँ, वीणा-आंटी, आना, विनोद-मौसाजी को नमन।

पीएचडी शोध-कार्य के दौरान मुझे इस बात का अनुभव और भी मजबूती से हुआ कि इस अकादमिक स्तर पर किया गया कोई भी काम सिर्फ किसी के व्यक्तिगत प्रयास से संभव नहीं है। मैं हर उन व्यक्ति एवं मित्रों का शुक्रगुजार हूँ जिन्होंने इस शोध-कार्य को पूरा करने में मेरी मदद की है।

यह शोध-ग्रन्थ पूर्वोत्तर के उन तमाम लोगों को समर्पित है जो चारों तरफ से अतिक्रमणकारी शक्तियों से घिरे होने पर भी अपनी अस्मिता, ज्ञान, और इंडीजीनियस विचारों के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

अध्याय 1.

विषय परिचय

अध्याय 1. विषय परिचय

भारत भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, भाषा आदि के क्षेत्र में इतना विविधतापूर्ण है कि इसके के बारे में सामान्यीकृत रूप से कुछ कहना मुश्किल हो जाता है। भारत में हजारों भाषाएँ, कहीं आधुनिकता तो कहीं लोकजीवन, एक ही समय में दो अलग भौगोलिक परिवेश में अलग तरह का मौसम, कुछ बेहद अमीर बांकी बहुत गरीब जनता, सब कुछ है। अलग-अलग धर्म और परम्पराएं हैं, अलग विश्वास है, फिर भी एक विचार है जो इस देश को जोड़े रखने के लिए ताकत और अधिकार देता है, वह है हमारा संविधान। भारत का संविधान हर नागरिक को बराबरी का हक देता है। संविधान हमें इस विविधता से उत्पन्न होने वाले अनचाहे तनाव को दूर करने की प्रेरणा और ताकत देता है।

वर्तमान[1] में राजनीतिक रूप से 28 राज्यों और 8 केंद्र शासित प्रदेशों वाला यह देश सांस्कृतिक रूप से बहुत विविधताओं के साथ जुड़ा हुआ है। विविधता किसी भूमि विशेष के समृद्धि का प्रतीक मानी जाती है। किन्तु एक बड़ी आबादी में संवेदनशीलता और समझदारी के अभाव में यह सांस्कृतिक विविधता कई बार अप्रिय घटनाओं की शिकार बनती है। इसका एक बड़ा कारण अपने देश के विभिन्न क्षेत्रों, संस्कृतियों एवं लोगों के बारे में अनभिज्ञ रहना भी कहा जा सकता है। लोगों को देश के अन्य भागों की भौगोलिक स्थिति के बारे में नहीं पता रहता है। वहाँ के लोग कैसे रहते हैं, कैसे दिखते हैं, क्या खाते हैं, कैसा बोलते हैं, अपने साथी नागरिक के बारे में ऐसी मूलभूत जानकारी भी

[1] दिसम्बर 2022 में भारत के 28 राज्य और 8 केंद्र शासित प्रदेश हैं। अक्तूबर 2019 में संसद द्वारा जम्मू और कश्मीर के राज्य के दर्जे को ख़त्म कर ‘जम्मू और कश्मीर’ तथा ‘लद्दाख’ केंद्र-शासित प्रदेश का गठन किया गया।

हमारे देश में नहीं रहती है। आए दिन होने वाली नस्लीय हिंसा की घटनाएँ इस देश की विविधता पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देती है। अपने विस्तृत भूभाग में भारत अनेक संस्कृतियों को समाहित किये हुए है। अफ़सोस की बात यह है कि एक बड़ी आबादी इन संस्कृतियों की भौगोलिक स्थिति तक को नहीं जानती है। ऐसी अनभिज्ञता और उससे उपजे समस्याओं का शिकार हमारा शोध-क्षेत्र पूर्वोत्तर भारत भी है। इस शोध कार्य का एक उद्देश्य पूर्वोत्तर के कुछ समाजों की लोककथाओं के अध्ययन के द्वारा शेष भारत में व्याप्त इस सांस्कृतिक अनभिज्ञता को दूर करना है।

'पूर्वोत्तर', आठ राज्यों का एक भौगोलिक सम्मुचय जो सांस्कृतिक, भाषिक और राजनीतिक रूप से अपने आप में वैसा ही विविधतापूर्ण है जैसा भारत की विविधता के बारे में कहा जाता है। पूर्वोत्तर भारत से तात्पर्य अरुणाचल प्रदेश, असम, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, सिक्किम और त्रिपुरा से है। भौगोलिक रूप से ये राज्य एक सम्मुच्य का निर्माण करती है जो भारत के राजनीतिक मानचित्र पर और भी विशेष हो जाती है क्योंकि एक स्थान पर इन राज्यों को शेष-भारत से जोड़ने वाली भारत की भूमि मात्र 20 किलोमीटर चौड़ी रह जाती है। इसके कई सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पूर्वोत्तर के राज्यों पर देखने को मिलते हैं जिसकी विस्तार से चर्चा हम आगे करेंगे। 269179 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैले पूर्वोत्तर भारत में 200 से अधिक आदिवासी, गैर-आदिवासी समुदाय रहते हैं[2]। पूर्वोत्तर भाषिक रूप से बेहद समृद्ध और विविधतापूर्ण है। अलग-अलग समुदायों द्वारा विभिन्न भाषा परिवारों की करीब 420 भाषा एवं बोलियाँ

[2] https://indianculture|gov|in/north-east-archive/history-north-east

यहाँ बोली जाती हैं।[3] यहाँ भाषाई विविधता ऐसी है कि कई बार एक ही मुख्य समुदाय के अन्दर के विभिन्न समुदाय के लोग एकदूसरे की भाषा को नहीं समझ पाते हैं। पूर्वोत्तर में तिब्बती-बर्मन, एस्ट्रो-एशियाई, इंडो-यूरोपियन जैसी तमाम भाषा परिवार की भाषाएँ जीवित हैं। यह भाषावैज्ञानिक विविधता पूर्वोत्तर को बहुत ख़ास बनाती है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत विश्व के सबसे विविधतापूर्ण क्षेत्रों में आता है। सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत बेहद समृद्ध है। यहाँ आदिवासी एवं गैर-आदिवासी दोनों समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा देखने को मिलती है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों का जीवन पीढ़ियों में विकसित लोकसंस्कृति द्वारा संचालित होता है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों पर पड़ने वाले तमाम बाहरी प्रभावों के बावजूद इनकी लोकसंस्कृति के मुख्य तत्व आज भी जीवन और व्यवहार से जुड़े हुए हैं। लोक जीवन पर लोककथाओं और मिथकों का गहरा प्रभाव है। ये लोक कथाएँ पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों के इतिहास, परंपरा, रीति-रिवाज, मूल्य और अस्मिता के वाहक है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों के जीवन दृष्टि को समझने के लिए उनके लोक कथाओं, मिथकों, लोकगीत, लोक नृत्य आदि लोक संस्कृति के विभिन्न पक्षों को समझना आवश्यक है।

नारीवादी आन्दोलनों और उससे उपजे विमर्शों की एक सबसे बड़ी उपलब्धि इस विचार को स्थापित करना था कि प्रकृति ने लिंग बनाया और सभ्यताओं ने 'जेंडर'। जेंडर एक सामाजिक निर्मिती है जिसके द्वारा समाज सभी लिंगों के लिए विशेष जिम्मेदारी और

---

[3] John Samuel, Language and Nationality in North-East India, Economic and Political Weekly, Vol। 28, No. 3/4 (Jan। 16-23, 1993), pp। 91 "About 420 languages and dialects of different language families are used in a complex and wide-ranging ethno and socio-linguistic configuration in north-east India"

भूमिका तय करता है। प्रकृति ने स्त्री और पुरुष जैसे लिंग का निर्माण किया तो सभ्यताओं ने मर्द और औरत जैसे जेंडर का। किसी लिंग को जेंडर की भूमिका में बाँध कर समाज अपने सत्ता संबंधों के अनुकूल भूमिकाएँ तय करता है। "मर्द किसी परिवार या समाज का प्रधान होगा", "औरत की जिम्मेदारी खाना बनाने की है", "लड़कियों को जोर से नहीं हँसना चाहिए", "लड़कों को रोना नहीं चाहिए" ये जेंडर के आधार पर समाज द्वारा तय किये गए विभेद के कुछ उदाहरण हैं। जेंडर की अवधारणा द्वारा स्थापित नियम अधिकांशतः पुरुषों के पक्ष में होते हैं और स्त्रियों के ऊपर सत्ता स्थापित करने वाले होते हैं। जो लोग स्त्री और पुरुष में से किसी लिंग से खुद को जुड़ा नहीं मानते जेंडर के आधार पर स्थापित व्यवस्था में उनकी स्थिति और भी प्रतिकूल रहती है। जेंडर की व्यवस्था का मूल आधार पितृसत्ता है। दुनिया की अधिकाँश सभ्यताओं पर पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था का आधिपत्य है। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था पुरुषों की सत्ता को बनाये रखने के लिए विभिन्न मूल्यों के द्वारा समाज पर नियंत्रण करता है। जेंडर की अवधारणा इस सत्ता को बरकरार रखने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।

पूर्वोत्तर की लोक कथाएँ यहाँ के समाज की जीवन दृष्टि का आईना है। इन लोक कथाओं के माध्यम से हमें पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों के इतिहास, परंपरा, जीवन मूल्य, प्रकृति के साथ संबंध, पारस्परिक मानवीय संबंध आदि का पता चलता है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदाय वाचिक संस्कृति के वाहक है। ऐसे में लोककथाएँ, मिथक, लोकसंस्कृति आदि इन समाजों से जुड़ने और उनको समझने का अवसर प्रदान करती हैं।

1.1 पूर्वोत्तर : नामांकरण की पृष्ठभूमि

भारत एक विशाल एवं विविधतापूर्ण देश है। हिमाच्छादित पहाड़, पठार, सघन वन, द्वीप समूह, मरुस्थल, नदियों के विशाल मैदानी भूभाग से लेकर बेहद लंबी समुद्रतटीय सीमा भारत को भौगोलिक दृष्टि से सबसे विविधतापूर्ण देशों की श्रेणी में ले आती है। भौगोलिक विविधता के साथ ही भारत सांस्कृतिक, भाषिक और सामाजिक विविधताओं की दृष्टि से भी विशिष्ट है। लेकिन राजनीतिक रूप से आधुनिक राष्ट्र-राज्य के नियमों के अधीन पूरे भारत की विविधताओं को समेट कर, सबके साथ समान न्याय और व्यवहार करते हुए आगे बढ़ना एक चुनौती का विषय रहा है। यहाँ सत्ता कुछ क्षेत्र एवं समुदायों के पास केन्द्रित रही है, जिसके फलस्वरूप भारत के कई समुदाय और क्षेत्र हासिये पर चले गए हैं। इसके साथ ही भारत के विभिन्न क्षेत्रों को केंद्र के परिप्रेक्ष्य में देखने की जिस प्रक्रिया की शुरुआत ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के समय शुरू हुई थी, स्वतंत्रता के बाद भी वह चलती रही। भारत के उत्तरी हिस्से के कई राज्यों को उत्तर भारत कहा जाने लगा तो दक्षिणी हिस्से को दक्षिण भारत। लेकिन दक्षिण भारत या उत्तर भारत की अपेक्षा पूर्वोत्तर (North-East) भारत एक ऐसा भौगोलिक क्षेत्र है जो आधिकारिक रूप से संगठित और नामित क्षेत्र है।[4] इस क्षेत्र के लिए पूर्वोत्तर शब्द के उपयोग का शुरुआती प्रमाण एलेग्जेंडर मेकेंजी (Alexander Mackenzie) की लेखनी में मिलता है। मेकेंजी ने 1869 ई. में "Memorandum on the North-East Frontier of Bengal" लिखी। इस रिपोर्ट में वर्तमान पूर्वोत्तर के कई आदिवासी समुदायों के साथ

---

[4]Sanjib Baruah, In The Name Of The Nation, Inida and Its Northeast, The Invention of Northeast India Standford University Press, Standford, California, 2020, Page 34

ब्रिटिश सत्ता के संबंध, चुनौती और भविष्य की नीतियों पर सुझाव दिए गए हैं। इसके बाद मेकेंजी ने 1884 ई में "History of The Relations of Government with the Hill Tribes of the North-East Frontier of Bengal" लिखी। इसकी भूमिका में उन्होंने उल्लेख किया है कि 1835 ई में कैप्टन आर बोइलेउ पेम्बरटन (Capt R Boileau Pemberton) के "Report On Eastern Frontier Of British India" के बाद असम, चचार और चिटगांव के पहाड़ी पर रहने वाले आदिवासियों के सरकार के साथ राजनीतिक संबंध पर कोई सर्वे नहीं हुआ था। ऐसे में उनका 'मेमोरेंडम' स्थानीय सरकारों और भारत सरकार के विदेश विभाग के लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ।[5] पेम्बरटन और मेकेंजी ने कमोबेश एक ही भौगोलिक क्षेत्र के आदिवासी समुदायों के संबंध में लिखा है लेकिन इसके लिए जहाँ पेम्बरटन 'पूर्वी सीमांत' (Eastern Frontier) शब्द का उपयोग किया है वहीं मेकेंजी ने 'पूर्वोत्तर सीमांत' (North-East Frontier) शब्द का प्रयोग किया है। इसका कारण दोनों के कार्यक्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में इन समुदायों का अध्ययन हो सकता है। पेम्बरटन ब्रिटिश भारत के परिप्रेक्ष्य में इन समुदायों की भौगोलिक स्थिति देख रहे थे और मेकेंजी बंगाल प्रेसिडेंसी के परिप्रेक्ष्य में। किन्तु इस क्षेत्र के लिए मेकेंजी द्वारा उपयोग किया गया "North-East" शब्द चर्चित और धीरे-धीरे स्वीकृत हो गया। भारतीय उपमहाद्वीप में साम्राज्य स्थापित करने के बाद ब्रिटिश सत्ता ने कुछ क्षेत्रों के

[5] Alexander Mackenzie, "Memorandum on the north-east frontier of Bengal", Bengal Secratariet Press, Calcutta, 1869, page i

नामकरण में दिशात्मक स्थान-नामकरण (directional place-name)[6] का प्रयोग किया। इसके केंद्र से जो क्षेत्र दूर थे उनके लिए "Frontier" (सीमांत) शब्द का प्रयोग उन्होंने दो जगह किया। एक तरफ North West Frontier Province (NWFP) जो आज के पाकिस्तान का खैबर पख्तूनखवा प्रान्त है। वहीं दूसरी तरफ North-East Frontier Tract जो वर्तमान में लगभग संपूर्ण अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड का कुछ हिस्सा है। ये सीमांत प्रदेश उनकी सत्ता के सीमा निर्धारण के लिए बेहद महत्वपूर्ण थे। स्वतंत्रता के बाद इस क्षेत्र के प्रति केंद्र सरकार और उसके जिम्मेदार अधिकारियों की राजनीतिक दृष्टि भी कमोबेश वैसी ही दिखती है। अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं और आंतरिक विरोध के अतिरिक्त भय से ग्रसित होकर इस क्षेत्र के प्रति ऐसे फैसले लिए गए और ऐसी नीतियाँ बनाई गई जो यहाँ के आम लोग के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली रही हैं। पूर्वोत्तर के आधिकारिक नामकरण के बारे में संजीव बरुआ लिखते हैं,

"'पूर्वोत्तर भारत' के आधिकारिक स्थान-नामकरण के पीछे उपनिवेशी सत्ता समाप्ति के बाद के भारत के प्रबंधकों द्वारा बेतरतीब और बिना सोचे-समझे लिया गया फैसला है। वे एक साम्राज्यवादी सत्ता के सीमांत क्षेत्र को एक 'सामान्य संप्रभु देश' का राष्ट्रीय क्षेत्र बनाना चाहते थे।"[7]

उस समय ब्रिटिश उपनिवेशी सत्ता पूर्वोत्तर के स्वतंत्र आदिवासी समुदायों को अपने नियंत्रण में करने के लिए अत्याचारी सैन्य दस्तों को भेज रहे थे। लेकिन उनकी

[6] Sanjib Baruah, In The Name Of The Nation, Inida and Its Northeast, The Invention of Northeast India Standford University Press, Standford, California, 2020, Page 2

[7] ibid

अपेक्षा के विपरीत यहाँ उन्हें जबरदस्त प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। पूर्वोत्तर के विभिन्न भागों में आदिवासी योद्धाओं ने ब्रिटिश दस्ते के नेताओं को मार गिराया। एलेग्जेंडर मेकेंजी की लेखनी यूँ तो उपनिवेशी मानसिकता और उद्देशों से भरी हुई है लेकिन उसमें इन आदिवासी समुदायों के कड़े प्रतिरोध और साहस के प्रति भय और खीझ साफ़ देखी जा सकती है।[8] पूर्वोत्तर में अंग्रेजों के आगमन का एक कारण असम और मणिपुर के मैदान और घाटी के राजाओं द्वारा सैन्य सहायता की मांग भी था। वे पहाड़ों पर रहने वाले आदिवासी समुदायों के हमलों से परेशान थे। अहोम राज्य के सीमांत मैदानी गाँवों में पास के पहाड़ों पर रहने वाले आदिवासी समुदाय के दस्ते आते थे और जरुरत की चीजें लूट कर ले जाते थे। अहोम राजा प्रताप सिंह ने इन हमलों को रोकने की पूरी कोशिश की, लेकिन वे असफल रहे तब उन्होंने 'पोसा' व्यवस्था की शुरुआत की। इसके तहत विभिन्न गाँवों को जिम्मेदारी दी गई कि वे पहाड़ के निर्धारित गाँव को अनाज और अन्य जरुरी सामान दे और इसके बदले राजा ने पोसा में दिए गए सामग्री के बराबर का कर माफ़ कर दिया। पोसा प्रणाली का एक लाभ यह हुआ कि इन मैदानी गाँवों पर हमलें बंद हो गए। अंग्रेजों ने भी पोसा व्यवस्था को कुछ समय तक जारी रखा लेकिन उन्होंने इसके प्रक्रिया और स्वरुप को बदल दिया। पहले अहोम राज्य के गाँव पहाड़ के गाँवों को अनाज और जरुरत के अन्य सामान के रूप में पोसा सीधे देते थे लेकिन अंग्रेजों ने इसका भुगतान अपने अधिकारियों के माध्यम ने करना शुरू कर दिया। 1852 ई. में उन्होंने वस्तुओं का भुगतान करना बंद कर दिया और इसके बदले पैसे से भुगतान करने लगे। 1878 ई. में अंग्रेजों नें पोसा पाने वालों को 'हाथ चिट्ठा' देना शुरू किया। अंग्रेजों ने पोसा

[8] Alexander Mackenzie, "Memorandum on the north-east frontier of Bengal", Bengal Secratariet Press, Calcutta, 1869

व्यवथा का इस्तेमाल आदिवासी समुदायों पर अपने नियंत्रण को बढ़ाने के लिए किया। उन्होंने ब्रिटिश सत्ता के शत्रुओं को सहारा देने वाले समुदायों को पोसा देना बंद कर दिया, ऐसे में समुदाय के लोग स्वयं ऐसे व्यक्तियों को अंग्रेजों के हवाले करने लगे।[9] अंग्रेजों ने यहाँ अपने नियंत्रण को स्थापित करने के लिए हर संभव प्रयास किये। इसके लिए प्रशासनिक नियंत्रण के साथ-साथ सांस्कृतिक नियंत्रण का सहारा भी लिया।

इस क्षेत्र के लिए 'पूर्वोत्तर' संबोधन के अपने आप में कुछ सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव हैं जिनकी चर्चा आवश्यक है। अंग्रेजों के शासन के समय 'पूर्वोत्तर' संबोधन के मूल में उपनिवेशी नीतियाँ और अपेक्षाएँ समाहित थीं। किन्तु भारत की आज़ादी के बाद इस क्षेत्र के लिए 'पूर्वोत्तर' शब्द का उपयोग जारी रहा। यहाँ तक कि भारत सरकार द्वारा आधिकारिक रूप से भी कई ऐसे कानून और संस्थाएँ स्थापित किये गए जिनका नाम पूर्वोत्तर पर आधारित था। 1971 ई. में पाकिस्तान से उसके पूर्वी सीमा पर युद्ध और विजय के कुछ ही दिन बाद भारत सरकार ने Northeastern Areas (Re-organization) Act 1971 और North Eastern Council Act जैसे कानून बनाये। जो क्रमशः नए राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों के गठन और विकास और सुरक्षा के मामलों में नीति एवं निर्देश के लिए थे। इसके अलावा भारत सरकार ने इस क्षेत्र के लिए एक मंत्रालय का भी गठन किया जिसे Union Ministry of Development of North-Eastern Region कहा जाता है। क्षेत्र में केन्द्रीय विश्वविद्यालय का गठन भी North Eastern Hill University (NEHU) के नाम से हुआ। इसके साथ ही क्षेत्र से

---

9 Tade Sangdo," POSA SYSTEM: A CASE STUDY OF THE BRITISHNYISHI RELATIONS', Reaeasrch Guru, Volume 12, Issue 2, September 2018, http://www।researchguru।net/volume/Volume%2012/Issue%202/RG134।pdf

दूर दिल्ली में जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में The Centre for North East Studies and Policy Research और जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में Special Centre for the Study of North East India जैसे विभाग इस क्षेत्र पर केन्द्रित अध्ययन के लिए खोले गए।[10] एक तरह से आठ अलग राज्यों को एक सम्मुचय के रूप में देखना आधिकारिक रूप से स्थापित हो गया।

पूर्वोत्तर के राज्यों को एक सम्मुचय के रूप में देखने से अक्सर यहाँ के विभिन्न राज्यों और उन राज्यों के भी विभिन्न समुदायों के मुद्दों, अपेक्षाओं और आकाँक्षाओं का सामान्यीकरण हो जाता है। पूर्वोत्तर के लोग अपने आपको अपने समुदाय के नाम से जानने के पक्ष में हैं। इसका उदाहरण देते हुए संजीव बरुआ ने लिखा है कि "पूर्वोत्तर के लोग अपने बारे में बात करते हुए सामान्यतः यह नहीं कहते कि 'एक नार्थईस्टनर होने के नाते मैं...।' बल्कि वे कहते हैं, 'एक मणिपुरी,... एक खासी,।।। एक नागा, होने के नाते मैं...'"[11]

भारत के शेष भागों में पूर्वोत्तर के लोगों के साथ होने वाले नस्लभेदी अपराधों से हम अवगत हैं। इस तरह के नस्लीय हमले करने वाले लोग पूर्वोत्तर के लोगों के रूप-रंग, खान-पान और अपनी पूर्वाग्रही धारणा के आधार पर करते हैं। उन्हें उनके राज्यों के अंतर के बारे में पता नहीं होता। ऐसे में पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों के लोग इस नकारात्मक

---

[10] Deepak Kumar, What is in a Name - Northeast Inida, Armchair Journal, 2020, https://armchairjournal|com/what-is-in-a-name-northeast-india/

[11] Sanjib Baruah, In The Name Of The Nation, Inida and Its Northeast, The Invention of Northeast India Standford University Press, Standford, California, 2020, Page 1

परिस्थिति में अपने आपको एकदूसरे के साथ पाते हैं। और यह साथ एकजुटता को जन्म देता है। अपने-अपने क्षेत्रों में भले ही दो समुदाय और राज्यों के बीच संबंध थोड़े तनाव वाले हों लेकिन घर से दूर एक सामान्यीकृत हमलें का सामना करने के लिए सभी समुदाय के लोग एक साथ खड़े हो रहे हैं। इस तरह की एकजुटता को कई विद्वानों ने 'निगेटिव सॉलिडेरिटी' का नाम दिया है।[12]

पूर्वोत्तर के लोगों को एक व्यक्ति समूह के रूप में देखने के पीछे कहीं न कहीं नस्लीय प्रोफाइलिंग की धारणा भी काम करती है। पूर्वोत्तर के लोगों को उनके रूप-रंग के आधार पर एक समूह के रूप देखने का पूर्वाग्रह बेहद आम रहा है।

[12] Duncan McDuie-Ra, Prof Subba ने इस विषय पर विस्तार से लिखा है। उनके विचार के केंद्र में भारत के शेष भागों में बसने वाले पूर्वोत्तर के प्रवासी नागरिक और उनके मुद्दे रहे हैं।

1.2 पूर्वोत्तर : अध्ययन की प्रासंगिकता

इस शोध प्रबंध में हमारे अध्ययन के केंद्र में पूर्वोत्तर के आदिवासी समाज हैं। ये समाज स्वयं विभिन्न स्तरों पर हासियाकृत हैं। ऐसे में इन समाजों के अन्दर जेंडर के परिप्रेक्ष्य में कौन हासिये पर है इसकी पड़ताल एक गंभीर अध्ययन और खुले हुए मन की मांग करता है। स्त्री अध्ययन के जेंडर-विमर्श सम्बन्धी मुख्यधारा के विचारों को हम पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों पर जैसे का तैसा नहीं थोप सकते हैं। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों की अपनी जीवन शैली है, उनके मूल्य, आदिवासी-ज्ञान भंडार, पीढ़ियों में विकसित परंपरा, वाचिक संस्कृति आदि मिल कर उनका निर्माण करते हैं। इसके साथ ही मुख्यधारा के समाजों एवं संस्कृतियों के अतिक्रमण का दवाब भी इनपर लगातार बना हुआ है। ऐसे में शोधार्थियों को पूर्वोत्तर के समाज को विभिन्न स्तरों पर देखना होगा।

पूर्वोत्तर का लोकजीवन बेहद समृद्ध है। विभिन्न आदिवासी समुदायों की अस्मिता लोककथाओं और मिथकों से गुथी हुई हैं। तमाम बाहरी धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दखल के बावजूद पूर्वोत्तर की लोकसंस्कृति आज भी मजबूती से अपनी परंपरा को आगे बढ़ा रही है। इन लोककथाओं के महत्त्व को इस तरह समझा जा सकता है कि पूर्वोत्तर के अधिकाँश आदिवासी समुदायों के पास अपने समुदाय की उत्पत्ति कैसे हुई इसके लिए एक मिथक उपलब्ध है। ये मिथक बेहद रोचक ढंग से इतिहास, कल्पना, परंपरा और जिज्ञासा का सम्मिश्रण किये हुए हैं। इनके माध्यम से हमें कई बार आदिवासी समुदायों के द्वारा बेहतर और सुरक्षित बस्ती की तलाश में की गई यात्राओं का भी पता चलता है। ये

कथाएँ हमें कई बार इसके भी संकेत देती हैं कि कौन से समुदाय आपस में जुड़े हुए हैं और कौन इन यात्राओं के कारण अलग हो गए। यथा दो भाइयों की यात्रा का जिक्र गारो लोककथाओं में आता है, जिसमें एक भाई जो नदी के उस ओर ही रह गया उससे बोडो समुदाय की उत्पत्ति हुई और जिसने नदी पार कर ली उससे गारो समुदाय की उत्पत्ति हुई।[13] आदिवासी वैचारिक प्रतिरोध के तेज होने के बाद से लोकसाहित्य के अध्येताओं ने अब ऐसी कथाओं के ऐतिहासिक महत्व को समझना शुरू कर दिया है और इसे अब एक ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में देखने की शुरुआत होने लगी है। चूँकि पूर्वोत्तर के आदिवासी वाचिक संस्कृति का हिस्सा रहे हैं और वे प्राप्य इतिहास में पारंपरिक रूप से लिपि का इस्तेमाल नहीं करते हैं इसलिए उनकी वाचिक परंपरा उनके इतिहास को समझने के सबसे महत्वपूर्ण माध्यम हो जाता है।

हमारा शोध-क्षेत्र पूर्वोत्तर, देश के जनता की अनभिज्ञता का गंभीर भुक्तभोगी रहा है। पूर्वोत्तर के लोगों को आज भी अक्सर अपने भारतीय होने के प्रमाण दिखाने पड़ते हैं। उनके तथाकथित 'मंगोलाइड' रंग-रूप, पहनावे, खान-पान आदि को लेकर उनके ऊपर जानलेवा हमले होते रहते हैं। अपने अनुभव साझा करते हुए पूर्वोत्तर के लोग अक्सर यह बताते हैं कि शेष भारत के अधिकाँश लोग पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों के नाम तक से अनभिज्ञ हैं। कौन सा राज्य कहाँ है, कौन से समुदाय की भौगोलिक स्थिति क्या है, यह भी कुछ ऐसे सवाल हैं जिनका स्पष्ट चित्र लोगों तक पहुंचना चाहिए। विभिन्न स्तरों पर पूर्वोत्तर का 'दृश्य प्रतिनिधित्व' (Visual Representation) बहुत आवश्यक हैं। इससे पूर्वोत्तर के बारे में व्याप्त अनजानेपन को बहुत हद तक तोड़ जा सकता है। पूर्वोत्तर के बारे

[13] शोधार्थी द्वारा शिलाँग में डॉ परिजात नर्जारी से सुनी लोककथाकथा के आधार पर

में हमारे पाठ्यक्रमों में न के बारबर बताया गया है। जो थोड़ा बहुत है वह भी बेहद अधूरा है। बचपन में हमें किताबों में यह तो पढ़ाया जाता है कि 'चेरापूंजी में सबसे ज्यादा बारिश होती है' लेकिन यह नहीं बताया जाता कि चेरापूंजी में लोग भी रहते हैं, वे कैसे दिखते हैं, क्या खाते हैं, कैसे बोलते हैं, क्या पहनते हैं, उनका समाज कैसे चलता है? हमें यह भी नहीं बताया जाता कि वहाँ के लोग इसे चेरापूंजी नहीं, शोरा बुलाते हैं। ऐसे सवालों से अनजान हम शोरा के बारे में सोचने पर सिर्फ 'मूसलाधार बारिश' का चित्र बना पाते हैं। वहाँ के लोगों से बिलकुल अनजान रह जाते हैं। यही अनजानापन आगे हमारे 'इग्नोरेंस' को बढ़ाता है और यह उन अनेकों समस्याओं को जिन्हें एक समाज के रूप में आज हम झेल रहे हैं, का कारण बनता है। पूर्वोत्तर के लोगों, उनकी संस्कृति, जीवनशैली और भौगोलिक स्थिति का 'दिखना' बहुत जरुरी है। एक बेहतर समाज बनाने के लिए हमें चाहिए कि इस समस्या को पहचाने और इस ओर ज्यादा से ज्यादा काम करें। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि हम इस शोध कार्य में पूर्वोत्तर के 'दिखने' अर्थात 'Visibility' के महत्व को ध्यान में रखें। पूर्वोत्तर के अधिकाँश लोग शेष-भारत के लिए 'मेनलैंड' शब्द का इस्तेमाल करते हैं। किसी भी लोकतंत्र के लिए यह बहुत अफ़सोस और चिंता की बात होनी चाहिए कि उसका एक हिस्सा 'मेन लैंड' अर्थात मुख्य भूमि कहलाया जाने लगे। भारत के साथ यह हो रहा है। सत्ता और संसाधन के केन्द्रीकरण, नकारात्मक राष्ट्रीय-राजनीतिक दृष्टिकोण, संवैधानिक अधिकारों के हनन, लम्बी प्रशासकीय उदासीनता और नक़्शे पर पूर्वोत्तर की स्थिति ने 'मेन-लैंड' के इस अवधारणा को और मजबूत किया है।

यह शोध कार्य पूर्वोत्तर के कुछ आदिवासी समुदायों की लोककथाओं में जेंडर के अध्ययन के माध्यम से पूर्वोत्तर के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं भाषिक परंपरा

एवं मुद्दों से हिंदी जन-मानस को अवगत कराने के उद्देश्य से किया जा रहा है। पूर्वोत्तर के आठ राज्य एवं उनके सैकड़ों आदिवासी समुदायों की लोककथाओं का न्यायोचित अध्ययन एक साथ करने का संसाधन और अवकाश पीएचडी शोध कार्य की समय सीमा में करना बेहद मुश्किल है। ऐसे किसी कार्य में त्रुटी, सामान्यीकरण और अन्यथा-प्रस्तुति (Misrepresentation) की अत्यधिक सम्भावना रहती है। अतः हमनें अपने शोध-कार्य के क्षेत्र को सीमित करते हुए पूर्वोत्तर के आदिवासी बहुल चार राज्यों, अरुणाचल प्रदेश, नागालैंड, मेघालय, और मिजोरम से एक आदिवासी समुदाय की लोककथाओं पर अध्ययन को केन्द्रित किया है। ये समुदाय क्रमश आदी, आओ-नागा, खासी और मिज़ो हैं। यह शोध कार्य मुख्यतः इन्हीं राज्यों और समुदायों को केंद्र में रख कर किया गया है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदाय पर काम करने से पहले एक शोधार्थी के रूप में यह बात पहले स्पष्ट करना आवश्यक है कि शोधार्थी व्यक्तिगत रूप से एक गैर-आदिवासी समुदाय से है और पूर्वोत्तर का मूलनिवासी नहीं है। शोधार्थी के अनुभव में पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय से एमफिल के दौरान पूर्वोत्तर में प्रवास, पीएचडी के दौरान पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों में जाकर 'फिल्ड वर्क' और पूर्वोत्तर के कई आदिवासी शोधार्थियों-विद्यार्थियों, विशेषज्ञों एवं शिक्षकों से व्यक्तिगत सम्बन्ध शामिल है। शोधार्थी ने अपने तरफ से इस बात की पूरी कोशिश की है कि वह अपने अध्ययन में पूर्वोत्तर के समाजों के प्रति पूर्वाग्रह और दुराग्रह से मुक्त रहे। इसके बावजूद एक गैर-आदिवासी समाजीकरण (Socialization) और जीवनदृष्टि (Worldview) में परवरिश के कारण इस बात की आशंका हमेशा बनी रहती है कि किसी आदिवासी समाज के समाजीकरण और जीवनदृष्टि को समझने में कमी रह जाए।

इस शोध कार्य में हमने मुख्यतः आदिवासी शोध-प्रविधि (Indigenous Research Methodologies) का प्रयोग किया है। बगेले चिलिसा (Bagele Chilisa) की किताब "Indigenous Research Methodologies"[14] ने आदिवासी और ट्राइबल समाजों पर होने वाले शोध और उनकी पश्चिमी दृष्टि के पूर्वाग्रह को उजागर करते हुए इस बात को स्थापित किया कि इंडीजीनियस समाजों को बिना उनकी दृष्टि से देखे शोध करना उचित नहीं है। वे उत्तरऔपनिवेशिक यूरोपीय-पश्चिमी प्रविधियों की आलोचना की और तीसरी दुनिया, अफ्रीकी, हाशियाकृत नारीवादियों के सैद्धांतिक नज़रिए और जीवनदृष्टि से प्रेरित उत्तरऔपनिवेशिक आदिवासी प्रविधि (postcolonial indigenous feminist research methodologies) की स्थापना करती हैं।

इस शोध के दौरान पूर्वोत्तर की लोककथाओं का अध्ययन करते हुए हमने बगेले चिलिसा की स्थापनाओं को प्रविधि के रूप में उपयोग में लाने का प्रयास किया है। पूर्वोत्तर के विभिन्न ट्राइबल समुदायों की लोककथाओं को संबंधित समाज की विश्वदृष्टि के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन के दौरान एक समस्या का सामना अवश्य करना पड़ा कि अगर किसी लोककथा का कथ्य ऐसा हो जो हमारे विचारों से बिलकुल मेल न खाती हो, ऐसे में एक बाहरी-व्यक्ति होने के नाते शोधार्थी सम्बंधित समाज और शोध-कार्य के साथ न्याय कैसे करे! ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक मुश्किल प्रश्न है। और गैर-आदिवासी, गैर-

---

[14] Bagele Chilisa, Indigenous Research Methodologies, Sage Publication, USA, 2012

पूर्वोत्तरवासी होते हुए भी बजाय सीधे पूर्वाग्रह युक्त निर्णय पर पहुंचे शोधार्थी के मन में द्वंद्व उत्पन्न हो रहा हो तो इसे हाशियाकृत समाजों द्वारा स्थापित विमर्शों की सफलता है।

1.3 पूर्वोत्तर : भौगोलिक एवं सामाजिक परिचय

हिमायल की पर्वत श्रृंखलाओं, घाटियों और कुछ मैदानी भूभागों में बसा पूर्वोत्तर, समृद्ध प्राकृतिक जनजीवन, विविधतापूर्ण मौसम, नदियों, पहाड़ों एवं जंगलों से सुसज्जित है। अपनी प्राकृतिक खूबसूरती और वन्य संपदा के कारण पूर्वोत्तर का अधिकाँश भाग बेहद मनोरम लगता है। पूर्वोत्तर भारत के भौगोलिक स्थिति को मुख्यतः तीन क्षेत्रों बांटा जा सकता है,[15]

1. पठार : मेघालय और कार्बी पठार।
2. पर्वतश्रृंखलाएँ : पूर्वोत्तर हिमालय के अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम की पर्वतश्रृंखलाएँ, पूर्वी हिमालय के नागालैंड, मणिपुर, असम, मिज़ोरम और त्रिपुरा की पर्वतश्रृंखलाएँ।
3. मैदान : असम के ब्रह्मपुत्र और बराक के मैदान, मणिपुर के इम्फाल घाटी का मैदान और त्रिपुरा का मैदान।

किन्तु विशेषताओं को देखने से पहले समस्याओं और चिंताओं पर बात करना अधिक सारगर्भित होगा। यह क्षेत्र तीव्र भूकंप संभावित क्षेत्र में आता है। तीव्र भूकंप संभावित ज़ोन 4 में आने वाले सिक्किम के अतिरिक्त पूर्वोत्तर के सभी राज्य तीव्र से अति-तीव्र भूकंप संभावित ज़ोन 5 में आते हैं अर्थात यहाँ 6 की तीव्रता से अधिक के भूकंप आए हैं। ऐतिहासिक रूप से 1897 में मेघालय में 8।1 की तीव्रता से तथा 1950 में

---

[15] Rajiv Gandhi University, Arunachal Pradesh, History of North East India (1228-1947), Vikash Publishing House, Noida, 2016, Page 5

अरुणाचल प्रदेश के कुछ इलाकों में 8।6 की तीव्रता के घातक भूकंप आ चुके हैं।[16] इस क्षेत्र में तीव्र भूकंप की आशंका बनी हुई है किन्तु उसका सामना करने और जान-माल के नुकसान की संभावना को कम करने का कोई ठोस उपाय नहीं किया जा रहा है।

हमारे अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि भारत के मानचित्र पर पूर्वोत्तर की स्थिति और प्रस्तुत शोध-कार्य के शोध-क्षेत्रों की भौगोलिक स्थिति को भी उतना ही महत्व दें।

[16] http://asc-india।org/menu/hazard।htm

मानचित्र 1.1 : भारत, राजनीतिक[17]

राजनीतिक रूप से पूर्वोत्तर की स्थिति भारत के लिए बेहद महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील रही है। किन्तु भारत के राजनैतिक हलकों में लम्बे समय से पूर्वोत्तर के मुद्दे

[17] https://surveyofindialgovlin/documents/polmap-eng-11012021ljpg

बड़ी मुश्किल से सुनाई देते हैं। खास कर अगर मुद्दा वहाँ के आम लोगों की हितों से जुड़ा हुआ हो। पूर्वोत्तर का अधिकांश भाग अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं से बंधा हुआ है। पूर्वोत्तर के राज्य एक पतले से भूभाग जिसे 'सिलीगुड़ी कॉरीडोर' के नाम से भी जाना जाता है, के द्वारा शेष भारत से जुड़ा हुआ है। इस वजह से वाणिज्य-व्यापार, परिवहन आदि की सम्भावना सीमित हो जाती है। पिट्रिसा मुखिम लिखती हैं, "जिसे पूर्वोत्तर भारत कहा जाता है वह 2।55 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल का एक बड़ा भूभाग है जो देश के कुल क्षेत्रफल का महज 7 प्रतिशत भाग है। इस क्षेत्र की मात्र 2 प्रतिशत सीमा भारत के साथ साझा है, बांकी 98 प्रतिशत सीमा बांग्लादेश, भूटान, म्यांमार, नेपाल और चीन जैसे देशों से लगी हुई है।"[18]

पूर्वोत्तर के अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम राज्यों की राजनीतिक स्थिति देखते हैं,

[18] Patricia Mukhim, Where is this North-east?, India International Centre Quarterly, Vol। 32, No। 2/3, Where the Sun Rises When Shadows Fall: The North-east (MONSOON-WINTER 2005), pp। 178, India International Centre।

मानचित्र 1.2 : पूर्वोत्तर, राजनीतिक[19]

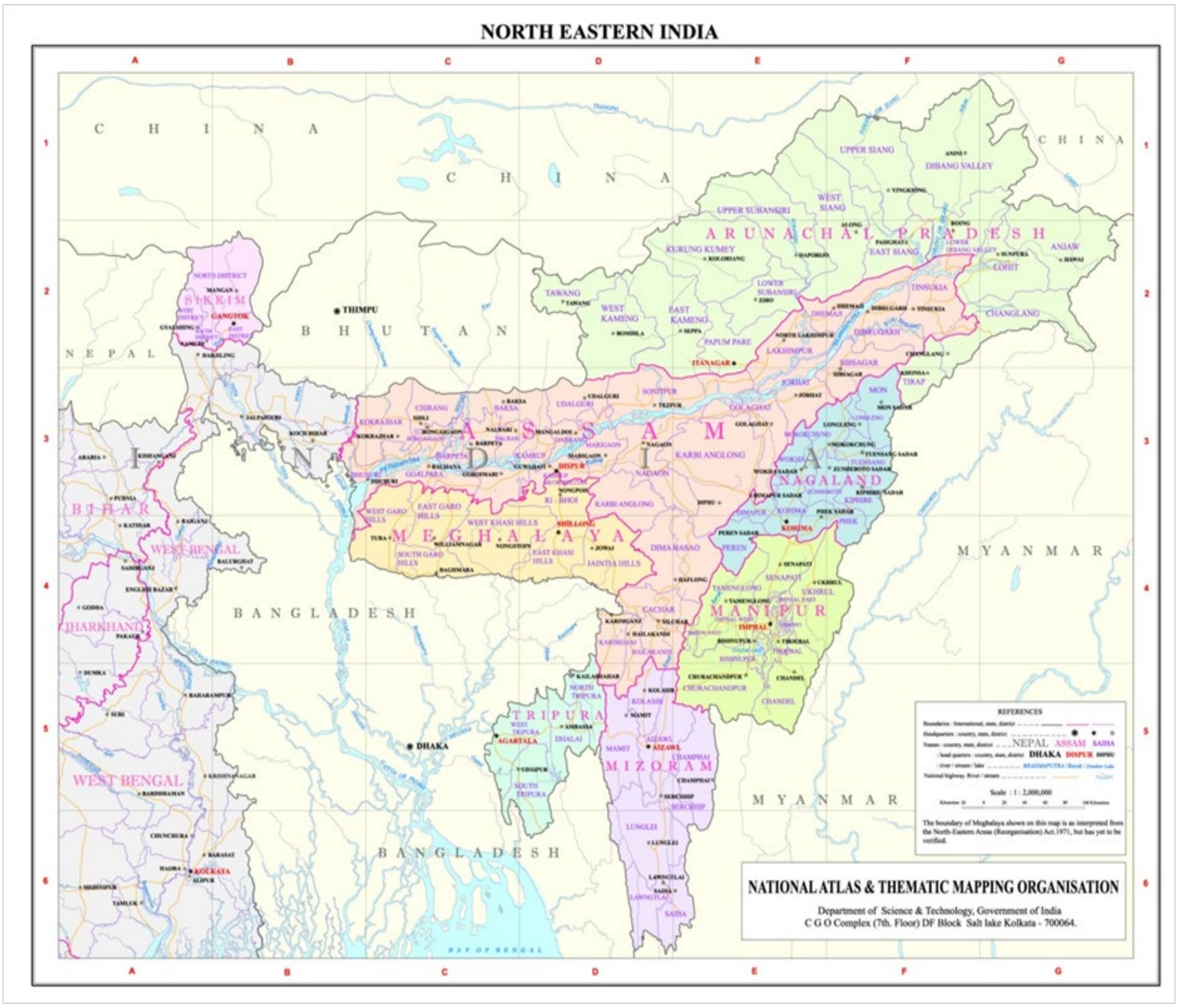

अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण पूर्वोत्तर राजनीतिक रूप से संवेदनशील क्षेत्र हो जाता है। आज़ादी के बाद समय के साथ पूर्वोत्तर में नए राज्यों की स्थापना हुई। आज़ादी के समय असम, मणिपुर और त्रिपुरा तीन राज्य थे। अन्य राज्यों की स्थापना इन राज्यों से हुई। लेकिन इन राज्यों की राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सीमाएं वहाँ के लोगों की भाषिक-सांस्कृतिक परम्परा और धरोहर को ध्यान में रख कर तय नहीं किये गए हैं, इसका विपरीत

[19] http://wwwlmdonerlgovlin/content/ne-region

प्रभाव यहाँ की जनता पर पड़ता है। शेष भारत जहाँ 1947 ई में बटवारा झेलता है वहीं पूर्वोत्तर को पहले बटवारे की मार 1937 ई में ही झेलनी पड़ी। सिन्धु फडके लिखती हैं, "पूर्वोत्तर क्षेत्र को पहला विभाजन तब ही सहना पड़ा जब 1937 में बर्मा (वर्तमान म्यांमार) ब्रिटिश भारत से अलग हुआ जिसने इस क्षेत्र के पूर्वी वाणिज्य केंद्र और व्यापर मार्ग को बाधित कर दिया। साथ ही साथ इस घटना ने मिज़ोरम, नागालैंड, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश और दूसरी तरफ बर्मा के कई समुदायों को भी बाँट दिया"[20]

यह क्षेत्र मुख्य रूप से भारत सरकार की सामरिक चिंता के केंद्र में ही रहा है। यह चिंता इस बात से भी परिलक्षित होती है कि 'सिलीगुड़ी कॉरीडोर' को 'चिकन नेक' के नाम से बुलाया जाता है। केंद्रीय नीति-निर्धारकों के बीच इस तरह की सामरिक चिंता पूर्वोत्तर के आम लोगों के प्रति मानवीय दृष्टिकोण को बाधित करता है। पिछले कुछ वर्षों में पूर्वोत्तर को ध्यान में रख कर योजनाएं बनाए तो गए हैं लेकिन उनमें पर्याप्त स्थानिक सलाह न लेने के कारण अक्सर प्रतिकूल परिणाम भी आये हैं। बिना स्थानीय विशेषज्ञों, समुदायों से सलाह लिए बिना, उनके असहमति के बावजूद किये गए निर्माण एवं विकास कार्यों का विपरीत परिणाम आये दिन दिखने लगा है। रेलवे के नए ट्रैक का निर्माण बिना वहाँ की पारिस्थितिकी को समझे किये जाने का परिणाम हमने 2022 में आए भीषण बारिश और भूस्खलन और उसके बाद असम के हाफलॉन्ग रेलवे स्टेशन की तबाही के उदाहरण को देख सकते हैं। स्थानीय लोगों ने निर्माण के पहले ही इसके खतरों के बारे में

[20] Sindhu Phadke, Women's status in North-Eastern India, Decent Books, Delhi, 2008, page 11

बताया था लेकिन उसे नजरंदाज कर निर्माण कार्य करवाया गया और परिणामस्वरूप सार्वजनिक संपत्ति की भारी बर्बादी हुई।

देश के क्षेत्रफल के 7 प्रतिशत भूभाग में फैला यह क्षेत्र जनसँख्या के मामले में कहीं विरल है तो कुछ राज्यों में सघन। पूर्वोत्तर के राज्यों की जनसंख्या का विकास देख सकते हैं,

1971 से 2011 तक पूर्वोत्तर की जनसंख्या[21] (लाख में परिवर्तित)

तालिका 1.1

राज्य	1971	1981	1991	2001	2011
अरुणाचल प्रदेश	4.68	6.32	8.65	10.98	13.83
असम	146.25	180.41	224.14	266.56	311.69
नागालैंड	5.16	7.75	12.10	19.90	19.81
मणिपुर	10.73	14.21	18.37	22.94	27.22

[21] PhD chapter 3, 1st page unavailable, http://shodhgangalinflibnetlaclin/bitstream/10603/76697/9/09_chapter%203lpdf

मिज़ोरम	3.32	4.94	6.90	8.89	10.91
मेघालय	10.12	13.36	17.75	23.75	29.64
सिक्किम	2.10	3.16	4.06	5.41	6.08
त्रिपुरा	15.56	20.53	27.57	31.99	36.71
पूर्वोत्तर कुल	197.92	237.88	319.54	389.86	455.88
भारत कुल	5481.60	6899.29	8463.03	10287.37	12101.93

हम देख सकते हैं कि आदिवासी बहुल राज्यों की जनसंख्या गैर-आदिवासी बहुल राज्यों की जनसंख्या से बहुत कम है। इस क्षेत्र में देश के अन्य क्षेत्रों एवं नेपाल, बांग्लादेश से बड़ी संख्या में विस्थापन भी हुआ है। त्रिपुरा जो एक आदिवासी बहुल राज्य हुआ करता था बड़ी संख्या में बाहरी लोगों के बसने की वजह से अब वहां के आदिवासी अल्पसंख्यक हो गए हैं। '1951 और 1981 के बीच त्रिपुरा की जनसंख्या 6.45 लाख से

20.53 लाख हो गई। मुख्यतः इसका कारण शरणार्थी थे जो पश्चिमी पाकिस्तान (बाद में बांग्लादेश) से आए थे। इस वजह से यहाँ के आदिवासी अल्पसंख्यक हो गए।'[22]

जनसंख्या घनत्व की बात करें तो यह भी पूर्वोत्तर के आदिवासी बहुल राज्यों की अपेक्षा गैर-आदिवासी बहुल राज्यों में अधिक है। सिक्किम के अतिरिक्त अन्य राज्यों के जनसंख्या घनत्व के विकास को देखते हैं

पूर्वोत्तर के राज्यों का क्षेत्रफल एवं जनसंख्या घनत्व 1981-1991-2001[23]।

तालिका 1.2

भारत / पूर्वोत्तर राज्य	क्षेत्रफल, वर्ग किलोमीटर में	जनसंख्या घनत्व प्रति वर्ग किलोमीटर		
		1981	1991	2001
भारत	3,287,263	230 (असम और जम्मू-कश्मीर के अतिरिक्त)	273(असम और जम्मू-कश्मीर के अतिरिक्त)	324

[22] Sindhu Phadke, Women's status in North-Eastern India, Decent Books, Delhi, 2008, page 123

[23] Ibid, page 13। The 1981 and 1991 census could not be held in Assam and J&K due to disturbed conditions। It is a projected figures

अरुणाचल प्रदेश	83,743	8	10	13
असम	78,438	230	286	340
नागालैंड	16,579	47	73	120
मणिपुर	22,327	64	82	107
मिज़ोरम	21,081	23	33	42
मेघालय	22,429	60	79	103
त्रिपुरा	10,486	196	263	304

इस शोध में पूर्वोत्तर के चार आदिवासी बहुल राज्यों से एक-एक समुदाय आदी, आओ-नागा, खासी और मिज़ो लोककथाओं को लिया गया है किन्तु यह आवश्यक नहीं कि इन समुदायों के लोग सिर्फ इन्हीं राज्यों में रहते हों। जैसा कि हमने चर्चा किया कि पूर्वोत्तर के राज्यों के बटवारे में सांस्कृतिक सीमाओं का ध्यान उचित रूप से नहीं रखा

गया यह भी एक वजह है कि एक ही समुदाय के लोग अन्य राज्यों में बंट गए। अपने शोध-क्षेत्र के विभिन्न राज्यों को प्रथमतः भारत के मानचित्र में स्थिति के परिप्रेक्ष्य में और फिर राज्य विशेष की अपनी स्थिति प्रस्तुत करते हैं;

अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर के उत्तरी-पूर्वी भाग में स्थित है। इसके उत्तर में चीन, पूर्व में म्यांमार, पश्चिम में भूटान दक्षिण में असम और नागालैंड स्थित है। अरुणाचल प्रदेश पूरब में भारत का सबसे अंत तक फैला राज्य है।

मानचित्र 1.3 अरुणाचल प्रदेश, राजनीतिक[24]

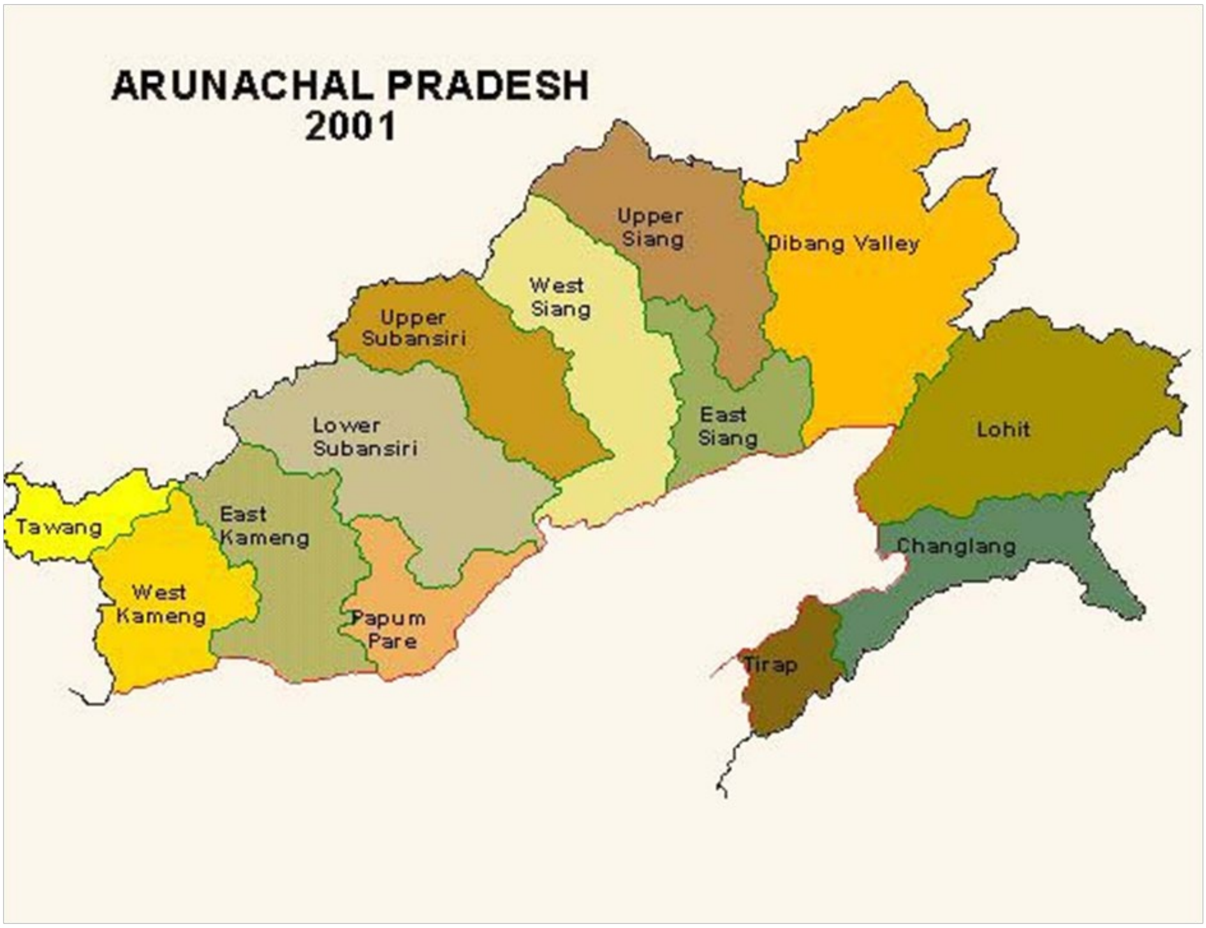

[24]http://www.censusindia.gov.in/maps/state_maps/StateMaps_links/arunachal01.html

2011 की जनगणना के अनुसार अरुणाचल प्रदेश का क्षेत्रफल 83743 वर्ग किलोमीटर है। वर्तमान में अरुणाचल प्रदेश में 23 जिले हैं।[25] अरुणाचल की जनसँख्या 13,83,727 है और साक्षरता 65.38% है।[26] अरुणाचल प्रदेश में वर्ष 2011-12 में स्थिर मूल्यों पर प्रति व्यक्ति आय 38130 थी।[27] 20 जनवरी 1972 को केंद्र शासित प्रदेश बनने से पहले अरुणाचल प्रदेश को नेफा (North-East Frontier Agency) कहा जाता था। भारत और चीन के बीच इसकी सीमा में युद्ध भी हो चुका है।[28] चीन के विस्तारवाद का सामना करने के लिए भारत सरकार ने इस राज्य के लोगों के बीच हिंदी का खूब प्रचार किया। यह एक सांस्कृतिक-राजनीति कही जा सकती है। शिक्षा-व्यापार आदि के माध्यम के रूप में हिंदी ही स्थापित की गई। इस प्रचार के द्वारा यहाँ के लोगों को बहुसंख्यक संस्कृति में रंगने का प्रयास किया गया। केंद्र शासित प्रदेश होने के कारण भारत सरकार के पास ऐसा कर पाने का अवसर भी था। भारी संख्या में उत्तर-भारत के शिक्षकों की नियुक्ति इस क्षेत्र में की गई।[29] इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी हो जाती है कि आज अरुणाचल प्रदेश की संपर्क भाषा हिंदी ही है। विभिन्न समुदाय के लोग आपस में हिंदी में संवाद करते हैं।

---

[25] http://www.arunachalpradesh.gov.in/

[26] http://dcmsme.gov.in/dips/state_wise_dips/STATE%20PROFILE%20OF%20ARUNACHAL%20%20PRADESH,%202015_14316.pdf

[27] http://pbplanning.gov.in/pdf/Statewise%20GSDP%20PCI%20and%20G.R.pdf

[28] Qasim Hameedy, 'SINO-INDIAN WAR 1962–WHERE DO INDIA AND CHINA STAND TODAY?' http://www.dtic.mil/dtic/tr/fulltext/u2/a589875.pdf

[29] शिलांग में अरुणाचल प्रदेश के शोधार्थी तुन्गाम बोको से चर्चा के आधार पर

"आदी अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख आदिवासी समूह में से आते हैं। ये मुख्यतः वेस्ट सियांग, अपर सियांग, ईस्ट सियांग और लोअर दिबांग वेली जिलों में रहते हैं। आदी वृहद् तानी समूह के प्रमुख समुदाय हैं जो स्वयं को 'मिथिकल' पूर्वज तानी के वंशज मानते हैं। पारंपरिक रूप से वे 'दोनी-पोलो' परंपरा में विश्वास रखते हैं। यूँ तो वे प्रकृति पूजन का पालन करते हैं फिर भी विभिन्न अवसरों पर कई देवी-देवताओं की आराधना करते हैं।"[30]

आदी समाज वर्ष भर कई उत्सव मनाता है। इनमें प्रमुख हैं, सोलुंग (Solung), मोपिन (Mopin), अरान (Aran) अथवा उन्यिंग (Unying) और पिमे (Pime)। सोलुंग और मोपिन उर्वरता का उत्सव है। जिसमें लोग क्रमशः किने-नाने और मोपिन की अराधना की जाती है। इसके अलावा भी वे अपने परिवार और समाज की सुरक्षा के लिए कई और देवी-देवताओं की आराधना करते हैं। अरान अथवा उन्यिंग नए वर्ष के स्वागत और पुराने वर्ष की विदाई का पर्व है। पिमे सर्दी के फसल कटाई से ठीक पहले मनाया जाने वाला उत्सव है जिसमें समाज सामूहिक शिकास का आयोजन करते हैं और देलोंग (Delong) लोकनृत्य करते हैं।[31]

आदी समाज में पारंपरिक रूप से न्याय-व्यवस्था एवं अन्य फैसले लेने के लिए "गाँव के स्तर पर 'कबांग' (Kebang) और विभिन्न गाँवों के स्तर पर 'बांगो कबांग' (Bango Kebang)। इनके द्वारा वे विवाद सुलझाते हैं और महत्वपूर्ण फैसलें स्वीकार्य

---

[30] Obang Tayeng, Folk tales of the Adis, Mittal Publication, New Delhi, 2003 page vii

[31] Obang Tayeng, Folk tales of the Adis, Mittal Publication, New Delhi, 2003 page vii

करते हैं। आम तौर पर इसकी बैठक सामुदायिक भवन में होता है जिसे मिसुप (Misup) अथवा डेरे (Dere) कहते हैं। इसका निर्माण ग्रामीण लोग सामुदायिक क्रियाकलापों के लिए करते हैं।[32]

नागालैंड के उत्तर में अरुणाचल प्रदेश और असम का कुछ भाग, पूर्व में म्यांमार, दक्षिण में मणिपुर और पश्चिम में असम स्थित है। नागालैंड में करीब 16 बड़े आदिवासी समुदायों और कई अन्य उपसमुदायों का निवास है।[33] नागालैंड की एक बड़ी सीमा म्यांमार से लगी हुई है इस लिहाज से यह सामरिक रूप से भारत के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। नागालैंड के कुछ भाग में बाहर के लोगों की बिना उचित कागजी कार्यवाही के प्रवेश की अनुमति नहीं है। नागालैंड पर्वत श्रृंखलाओं और घाटियों में बसा है।

भारत के परिप्रेक्ष्य में नागालैंड की बात होते ही लोग अक्सर यहाँ के पृथकतावादी आन्दोलनों के बारे में सोचने लगते हैं। ऐसे में इसकी पृष्ठभूमि पर थोड़ी चर्चा आवश्यक है। नागालैंड में पृथकतावादी आन्दोलन लम्बे समय से चल रहा है। हाल के वर्षों में शांति और आपसी सहमति के आसार नज़र आ रहे हैं। आज़ादी से पहले विभिन्न नागा समुदाय के लोग 'नागा नेशनल कौंसिल' (NNC) के अंतर्गत एक साझी अस्मिता बनाने की दिशा में अग्रसर हुए। इन्होंने 1946 में मुस्लिम लीग के असम को पूर्वी-बंगाल में मिलाने के प्रस्ताव का विरोध भी किया और असम के भारत के राज्य बने रहने की मांग की थी।

---

[32] Ibid, page viii

[33] https://www।nagaland।gov।in/portal/portal/StatePortal/AboutNagaland/NagalandInfo

फरवरी 1947 में अंग्रेजों के भारत को स्वाधीनता दिए जाने के विचार की घोषणा के बाद NNC के प्रतिनिधिमंडल ने वायसराय माउन्टबेटेन और भारत के नेताओं को एक मेमोरेंडम दिया और नागाओं को असम में दस साल के लिए विशेष स्वायतता की मांग की। बाद में असम सरकार के साथ यह बातचीत आगे नहीं बढ़ सकी और कोई आम सहमती नहीं बनी। इसके बाद NNC में जापू फिजो के नेत्रित्व में एक उग्र धड़ा उभरा और इन्होंने भारत से एक दिन पहले 14 अगस्त 1947 को नागा स्वाधीनता दिवस के रूप में घोषित कर दिया।[34] तब से आज तक भारत सरकार और नागा आन्दोलनकारियों के बीच लगातार बातचीत की कोशिश होती रही है।

आज नागालैंड के युवा शिक्षा और रोज़गार के सिलसिले में भारत के महानगरों की ओर रुख कर रहे हैं। अगर व्यवस्था उनके लिए सुरक्षित माहौल और बराबरी के मौके उपलब्ध कराने के प्रति गंभीर हो जाए तो यह केंद्र और नागालैंड की जनता के बीच की मानसिक दूरी को पाटने का काम कर सकती है।

आओ-नागा समुदाय नागालैंड के सबसे बड़े समुदायों में से एक है। उसका जीवन लोकसंस्कृति से जुड़ा हुआ है। आओ-नागा वृहद नागा परिवार के सबसे बड़े और समृद्ध समुदाय में से है। आओ मुख्यतः मोकोकचुंग (Mokokchung) जिले के करीब 93 गाँवों में रहते हैं। आओ समाज की उत्पत्ति के बारे में वाचिक परंपरा के अनुसार कहा जाता है कि 'लॉंगटेरोक' (Longterok) से तीन पुरुष और तीन स्त्री उत्पन्न हुए। लॉंगटेरोक का अर्थ है छः पत्थर। यह नागालैंड के तुएनसांग (Tuensang) जिले के संगतम

---

[34] Sindhu Phadke, Women’s status in North-Eastern India, Decent Books, Delhi, 2008, page 105

(Sangtam) क्षेत्र में स्थित है। यह मोकोकचुंग से करीब 20 किलोमीटर दूर स्थित है। मिथक के अनुसार आओ लॉगटेरोक में स्थित पुरुष और स्त्री अंग के आकार के छः पत्थरों से उत्पन्न हुए। पहले पुरुष थे टोंगपोक (Tongpok) जिनकी शादी इलोंगसे (Elongse) से हुई। फिर लॉगपोक (Longpok) की शादी लेनदिना (Lendina) से हुई और Logjakrep की शादी योंगमेनला (Yongmenala) से हुई।[35]

नागालैंड की संस्कृति बेहद समृद्ध है। हर साल मनाये जाने वाले 'होर्नबिल फेस्टिवल' में इसके विभिन्न झलकियाँ देखी जा सकती हैं। नागालैंड के आदिवासी समुदायों के वस्त्र बेहद खूबसूरत होते हैं, पॉपुलर कल्चर का हिस्सा बनकर अब वे अन्य लोगों द्वारा भी इस्तेमाल में आने लगे हैं। सुखद बात यह है कि नागालैंड का हथकरघा उद्योग महिलाओं के द्वारा ही चलाया जाता है। पारंपरिक रूप से कपड़ा बनाने का काम पुरुष नहीं कर सकते हैं।

भारत के मानचित्र पर नागालैंड की स्थिति देखते हैं,

---

[35] Temsula Ao, The Ao Naga oral tradition, Heritage publishing house, Dimapur 1999

मानचित्र 1.4 : भारत में नागालैंड की स्थिति.[36]

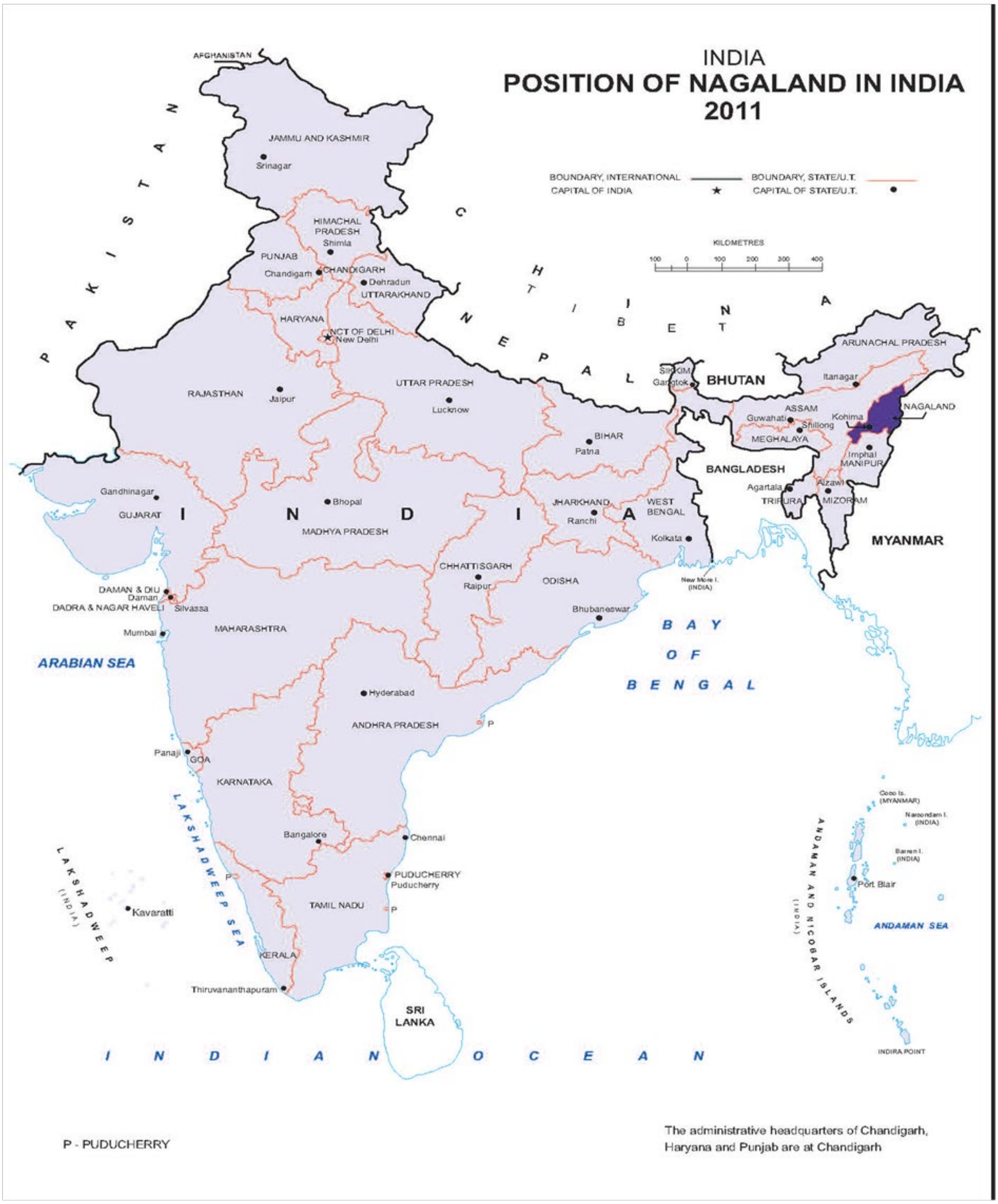

[36] http://www|censusindia|gov|in/2011census/maps/atlas/13part1|pdf

मानचित्र 1.5 : नागालैंड, राजनीतिक[37]

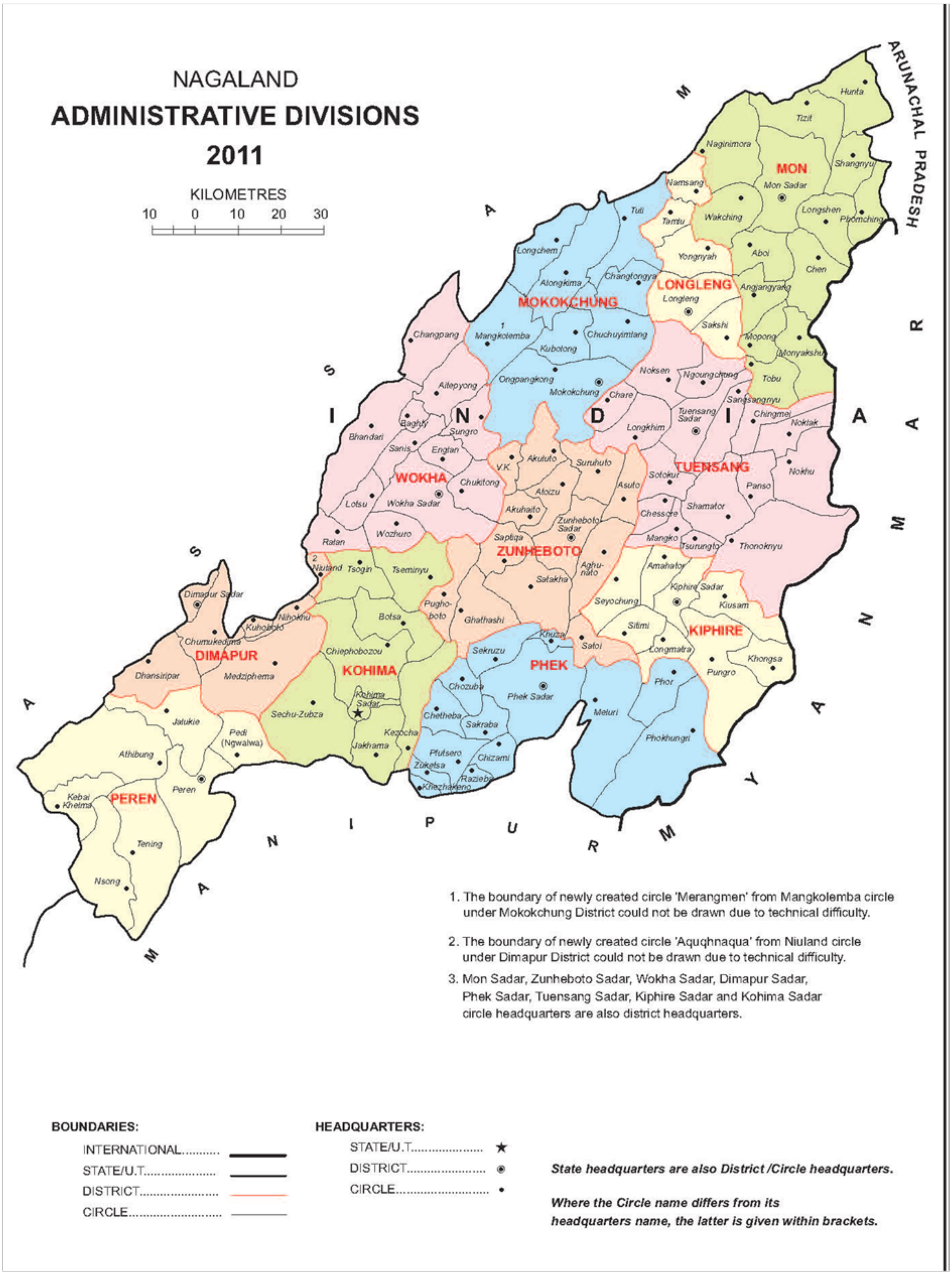

37 ibid

2011 की जनगणना के अनुसार नागालैंड का क्षेत्रफल 16579.00 वर्ग किलोमीटर है। नागालैंड के 11 जिलों में 1428 गाँव और 26 शहर हैं।[38] यहाँ की जनसँख्या 1980602 है। नागालैंड में वर्ष 2011-12 में स्थिर मूल्यों पर प्रति व्यक्ति आय 41522 था।[39] नागालैंड में स्त्री-पुरुष लिंगानुपात 931 है।[40] यहाँ जनसँख्या घनत्व 119 प्रति वर्ग किलोमीटर है।[41]

मेघालय भारत को दुनिया के नक़्शे पर ख़ास बनाता है, कारण है, यहाँ की मातृवंशीय सामाजिक व्यवस्था वाले समाज गारो, खासी (एवं जैंतिया[42])। पूरी दुनिया के अधिकांश समाज के विपरीत यहाँ के आदिवासी समुदाय में वंश माँ के नाम पर चलता है और परिवार भी मातृस्थानिक होता है। किन्तु राजनीतिक, सामाजिक नेतृत्व पुरुषों के पास ही होता है। हमारे शोध-कार्य के केंद्र में मेघालय की खासी जनजाति की लोककथाएँ हैं। खासी समाज की भाषा खासी है। खासी आस्ट्रो-एशियाटिक भाषा परिवार की *मुन-खमेर* समूह की एक शाखा है जो प्रधान ऑस्ट्रिक भाषा परिवार से संबंधित है।[43]

"खासी समाज में वंश का स्वामित्व पूर्ण रूप से स्त्री के पास होता है। मातृस्थानिक होने के कारण स्त्री अपने माँ के घर ही रहती है। सबसे छोटी बेटी मातृक संपत्ति पाती है, किन्तु उसकी भूमिका इसके देखरेख तक है। अपनी इच्छा से वह मातृक संपत्ति नहीं बेच

---

38 http://www|censusindia|gov|in/2011census/maps/atlas/13part1|pdf

39 http://pbplanning|gov|in/pdf/Statewise%20GSDP%20PCI%20and%20G|R|pdf

40 https://www|nagaland|gov|in/Nagaland/UsefulLinks/2|gender_composition|pdf

41 https://www|nagaland|gov|in/Nagaland/UsefulLinks/3|population%20density|pdf

42 खासी विद्वान मानते हैं कि जैंतिया वृहद् खासी समुदाय का ही एक उप-समुदाय है जिसे अंग्रेजों ने जानबूझ कर पृथक समुदाय के रूप में बांटने का प्रयास किया है।

43 Bareh, Hamlet, 'the language and literature of Meghalaya', Indian Institute of advanced study, Shimla, 1977, page 37

सकती। इसका निर्णय सबसे बड़े मामा की अनुमति से ही लिया जा सकता है। खासी की मातृवंशीय सामाजिक व्यवस्था स्त्री को केवल वंश का स्वामित्व प्रदान करती है।"[44]

मेघालय बटवारे ने मेघालय की आदिवासी जनसंख्या को बहुत प्रभावित किया है। पश्चिमी पाकिस्तान और बाद में बांग्लादेश बनने से मेघालय की जनजातियों के सांस्कृतिक और आर्थिक आवागमन में बाधा आई। आज भी बांग्लादेश में कुछ खासी रहते हैं।

वर्तमान समय में मेघालय के पारंपरिक बाज़ार स्त्रियों द्वारा से चलाए जाते हैं। मेघालय में सड़कों पर स्त्रियाँ 'विजिबल' हैं। भले ही पूँजीवादी बाज़ार ने मेघालय को भी उसी तरह से वैश्विक रंग-ढंग में रंग दिया है, किन्तु मेघालय की अपनी एक खासियत है जो अब भी बरक़रार है। भारत के मानचित्र पर मेघालय की स्थिति देखें,

[44] सेतु कुमार वर्मा, मैथिली एवं खासी लोककथाओं में स्त्री, m|phil, North Eastern Hill University

मानचित्र 1.6 : भारत में मेघालय की स्थिति[45]

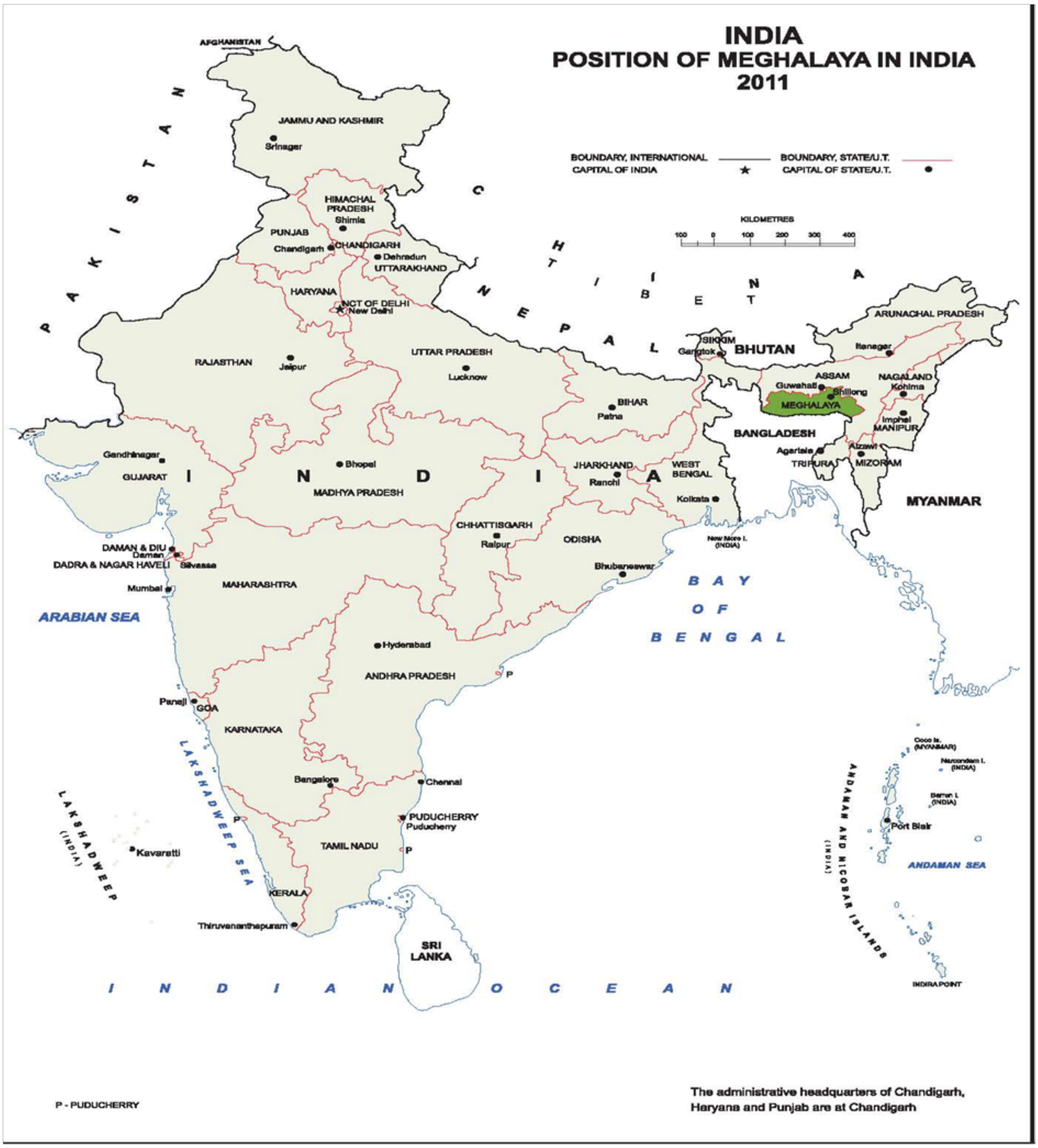

---

45 http://www.censusindia.gov.in/2011census/maps/atlas/17part1.pdf

मानचित्र 1.7 : मेघालय, राजनीतिक[46]

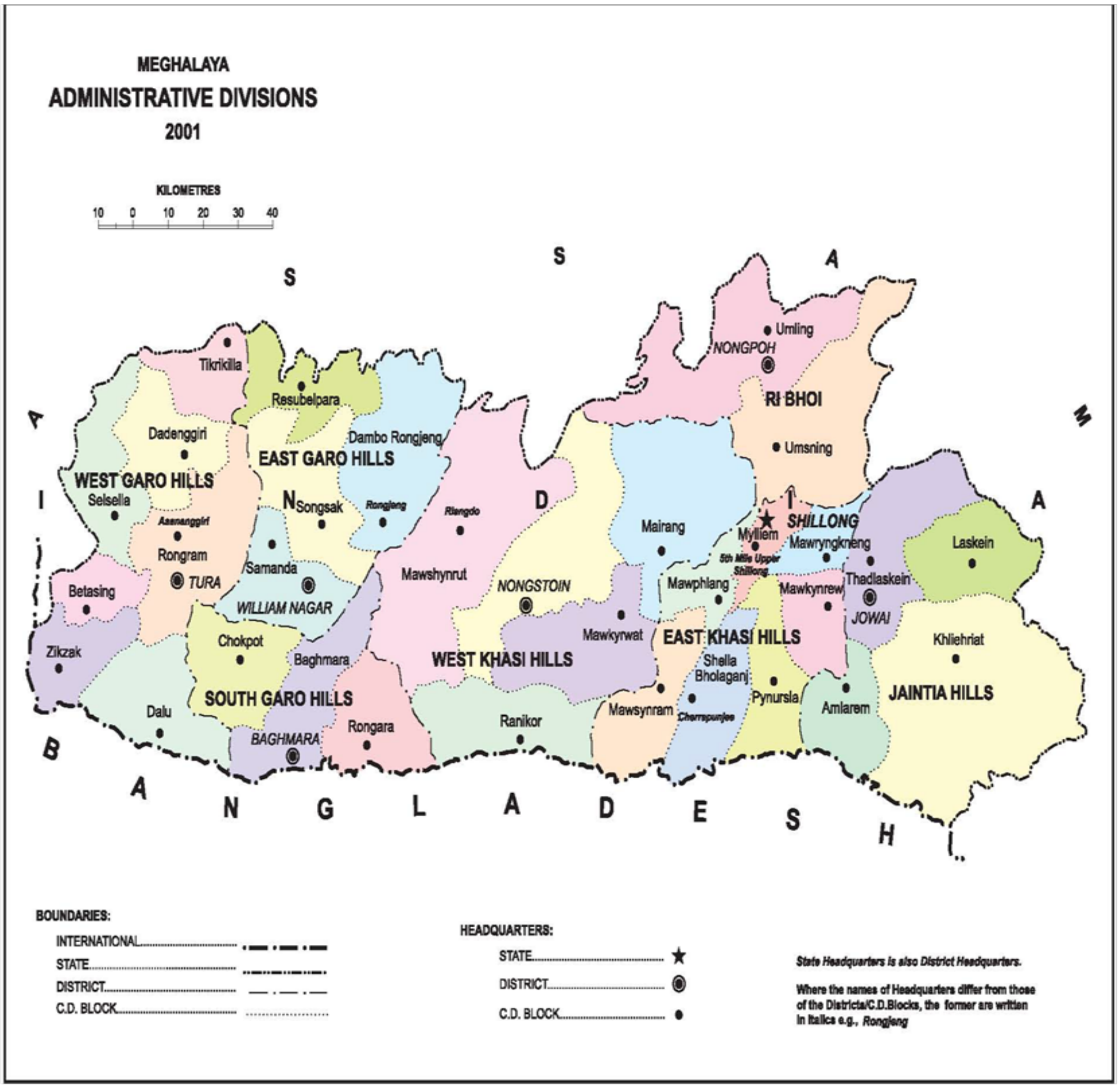

मेघालय का क्षेत्रफल 22429 वर्ग किलोमीटर है। 7 जिलों में 6839 और 29 शहर हैं।[47] मेघालय की जनसँख्या 2964007 है और स्थिर मूल्यों पर 2011-12 में प्रति व्यक्ति

---

[46] http://www|censusindia|gov|in/2011census/maps/atlas/17part1|pdf

आय 38944 थी।[48] मेघालय का जनसंख्या घनत्व 132 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है तथा साक्षरता दर 75.48% है।[49]

मिज़ोरम पूर्वोत्तर के सबसे दक्षिणी छोर पर बसा है। भारत में इसकी स्थिति और राजनीतिक अवस्थिति को देखते हैं,

---

47 http://www।censusindia।gov।in/2011census/maps/atlas/17part1।pdf

48 http://pbplanning।gov।in/pdf/Statewise%20GSDP%20PCI%20and%20G।R।pdf

49 http://meghalaya।gov।in/megportal/stateprofile

मानचित्र 1.8 : भारत में मिज़ोरम की स्थिति[50]

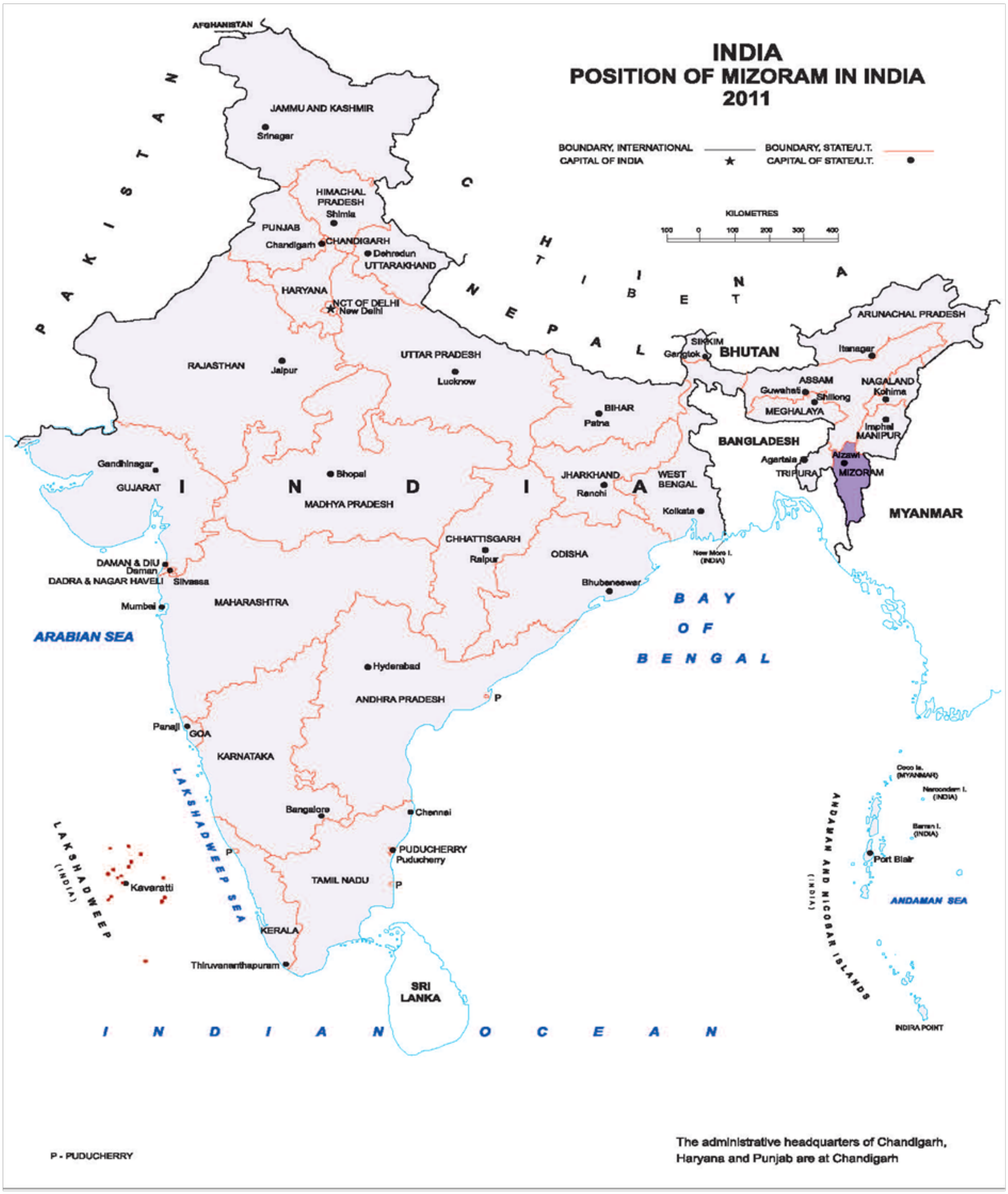

---

50 http://www|censusindia|gov|in/2011census/maps/atlas/15part1|pdf

मानचित्र 1.9 : मिज़ोरम, राजनीतिक[51]

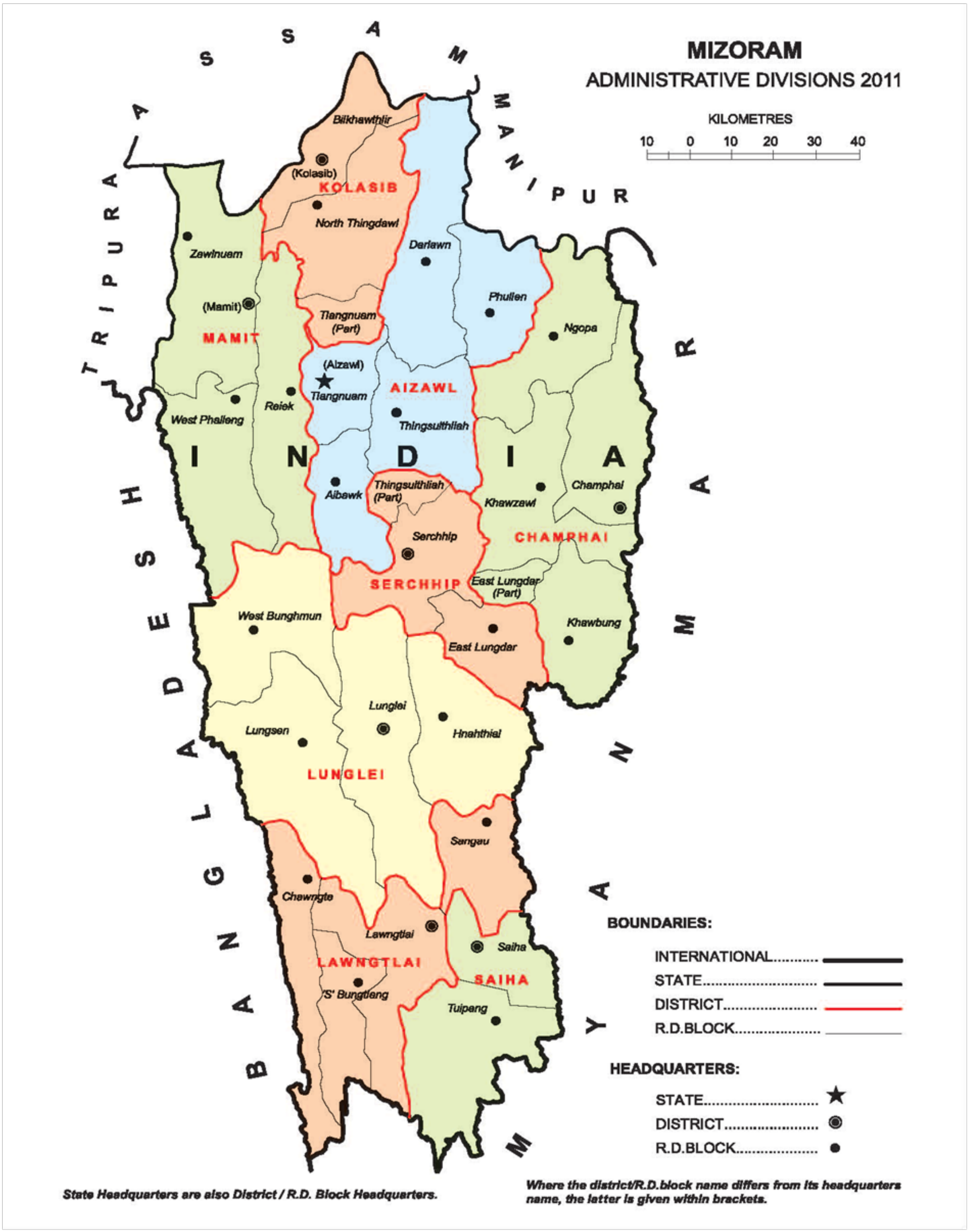

---
[51] Ibid

2011 की जनगणना के अनुसार मिज़ोरम का क्षेत्रफल 21081 वर्ग किलोमीटर है। मिज़ोरम के 8 जिलों में 830 तथा 23 शहर हैं।[52] मिजोरम की जनसंख्या 1091014 है और साक्षरता दर 91.58% है।[53]

मिज़ोरम में मुख्यतः मार (Hmar), लाई/पावी (Lai/Pawi), लुसेई (Lusei), मारा/लखेर (Mara/Lakher), पईते (Paite), राल्ते (Ralte) आदि जनजाति के लोग रहते हैं जिनके अपने कई उपसमुदय हैं। सामूहिक रूप से इनको 'मिज़ो' कहा जाता है।[54] मिज़ो अपने मूल को छिनलुंग (Chhinlung) से जोड़ते हैं। किन्तु छिनलुंग की वास्तविक स्थिति कहाँ यह यह अभी स्पष्ट नहीं है। इसके बारे में विद्वानों का मत बंटा हुआ है।[55] मिज़ो समुदाय के पास इस भूमि पर आने की लोककथा भी है। वर्तमान अध्ययनों में लोककथाओं और मिथकों के माध्यम से इनके इतिहास को समझने का प्रयास किया जा रहा है।

सांस्कृतिक रूप से पूर्वोत्तर की समृद्धि बेहतरीन है। पूर्वोत्तर ने आज भी अपनी लोकसंस्कृति की विरासत को संजो के रखा है। यहाँ बसने वाले सैकड़ों समुदायों की अपनी विशेष संस्कृति है। सैकड़ों भाषाएँ और उनके लोकसाहित्य इनकी जीवन दृष्टि का दस्तावेज़ हैं। लिपि न होने कारण पूर्वोत्तर के लोगों ने अपनी संस्कृति, परंपरा, रीति-रिवाज,

---

52 http://www।censusindia।gov।in/2011census/maps/atlas/15part1।pdf

53 https://mizoram।gov।in/page/know-mizoram

54 B Lalthangliana, Culture and Folklore of Mizoram, Publication Division, New Delhi, 2005, Page 2

55 Ibid, Page 4

गीत, कथाएँ आदि को वाचिक रूप से संभाल कर रखा। आधुनिक सभ्यता के दवाब के बावजूद पूर्वोत्तर ने अपनी संस्कृति को यूँ ही नहीं जाने दिया है।

1. 4 पूर्वोत्तर की सामाजिक स्थिति

पूर्वोत्तर की सामाजिक संरचना बेहद जटिल है। इसे समझने के लिए विभिन्न समुदायों की दृष्टि से देखना आवश्यक हो जाता है। हर राज्य में 'ट्राइबल' और 'नॉन-ट्राइबल' दोनों समुदायों के लोग रहते हैं। जहाँ अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैंड और मिजोरम की बहुसंख्यक आबादी ट्राइबल है, वहीं असम, त्रिपुरा और सिक्किम की बहुसंख्यक आबादी नॉन-ट्राइबल है। लेकिन इन राज्यों के ट्राइबल और नॉन-ट्राइबल समुदायों की संख्या बहुत अधिक है। हमारे शोध-क्षेत्र अरुणाचल प्रदेश में आदी समुदाय के ही बारह उपसमुदाय हैं। उनकी भौगोलिक स्थिति आम तौर पर अलग है, उनकी भाषा अलग है। आदी समुदाय में पादाम, मिन्योंग, पासी, बोरी, बोकार जैसे उपसमुदय आते हैं। इनके अलावा न्यिशी, गालो, मोन्पा, आपातानी, शर्दुकपेन आदि ट्राइबल समुदाय अरुणाचल प्रदेश में रहते हैं। अरुणाचल प्रदेश की अधिकाँश आबादी पारंपरिक रूप से प्रकृति-पूजक हैं। किन्तु एक संगठित धर्म न होने के कारण जनगणना में इन्हें एक साथ नहीं गिना गया है। 2011 की जनगणना में अरुणाचल प्रदेश की कुल आबादी 1383727 थी। जिसमें 713912 पुरुष और 669815 स्त्रियाँ हैं। यहाँ 418732 इसाई, 401876 हिन्दू और 362553 अन्य तथा अवर्गीकृत धर्मों एवं विश्वास के लोग हैं।[56] पूर्वोत्तर कई राज्यों में इसाई मिशनरी संगठन बहुत प्रभावी रहा है। नागालैंड, मिजोरम और मेघालय के अधिकाँश ट्राइबल समुदायों के लोगों ने बहुत जल्द इसाई धर्म अपना लिया है। इन राज्यों में थोड़ी आबादी पारंपरिक प्रकृति-पूजक संस्कृति का पालन आज भी करते हैं। किन्तु

[56] C -1 POPULATION BY RELIGIOUS COMMUNITY, Arunachal Pradesh, 2011, Census of India, 2011, https://censusindia|gov|in/nada/index|php/catalog/11364

स्थानिक प्रतिरोध, बाहरी आवागमन पर नियंत्रण और स्वतंत्र भारत के केंद्रीय नीतियों के कारण अरुणाचल प्रदेश में पड़ोसी राज्यों की अपेक्षा इसाई धर्म का प्रसार धीमा रहा है। यहाँ दोन्यी-पोलो (सूरज-चाँद) एक धर्म के रूप में स्थापित हो रहा है, जो पारंपरिक रूप से विश्वास का हिस्सा थी। इसे धर्म के रूप में स्थापित करने के पीछे कहीं न कहीं अन्य विशाल स्थापित धर्मों के मुकाबले संगठित होने का प्रयास है। अरुणाचल प्रदेश में बौध धर्म का पालन करने वालों की संख्या 162815 है।[57] विभिन्न धर्म एवं विश्वास के लोग आपस में सहयोग और सहअस्तित्व के साथ रहते हैं।

मेघालय की कुल आबादी 2966889 है जिसमें 1491832 पुरुष एवं 1475057 स्त्रियाँ हैं। यहाँ 2213027 इसाई, 342078 हिन्दू, 258271 अन्य तथा अवर्गीकृत एवं 130399 मुस्लिम हैं।[58]

नागालैंड की कुल आबादी 1978502 है। जिसमें 1024649 पुरुष एवं 953853 स्त्री हैं। नागालैंड में 1739651 इसाई हैं, 173054 हिन्दू, 48963 मुस्लिम हैं। लेकिन यहाँ अन्य एवं अवर्गीकृत धर्म का पालन करने वालों की संख्या मात्र 3214 है।[59]

मिजोरम की कुल आबादी 1097206 है। जिसमें 555339 पुरुष और 541867 स्त्रियाँ हैं। यहाँ 956331 इसाई, 93411 बौध, 30136 हिन्दू, 14832 मुस्लिम और अन्य

---

[57] ibid

[58] C-01: Population by religious community, Meghalaya - 2011, Census of India, 2011, https://censusindia.gov.in/nada/index.php/catalog/11384

[59] C-15: Religious community by age group and sex, Nagaland - 2011, Census of India, 2011 https://censusindia.gov.in/nada/index.php/catalog/11425

तथा अवर्गीकृत धर्मों के मात्र 808 लोग हैं। मिजोरम की इसाई वर्ग के जनसँख्या की एक उल्लेखनीय पक्ष यह है कि यहाँ अधिकांश समुदायों के पुरुष-स्त्री अनुपात के विपरीत स्त्रियों की संख्या 479867 है और पुरुषों की संख्या 476464।[60]

कह सकते हैं कि हमारे शोध-क्षेत्र के सभी ट्राइबल-बहुल राज्यों में इसाई धर्म का पालन करने वाले लोग बहुसंख्यक हैं। इसाई धर्म के प्रचार-प्रसार ने यहाँ की पारंपरिक संस्कृति को स्वाभाविक रूप से बहुत प्रभावित किया। इस सांस्कृतिक अतिक्रमण ने कई पारंपरिक रीतिरिवाजों का निषेध किया। किन्तु अगर पूर्वोत्तर के ट्राइबल समुदायों के शैक्षणिक, सामाजिक स्थिति की तुलना शेष-भारत के छतीसगढ़, उड़ीसा जैसे राज्यों के आदिवासी समुदायों से करें तो कहीं न कहीं पूर्वोत्तर की स्थिति थोड़ी बेहतर दिखती है।

पूर्वोत्तर की विविधतापूर्ण सामाजिक पृष्ठभूमि को गहराई से समझने की आवश्यकता है। यहाँ की सामाजिक संरचना जटिल है। विभिन्न समुदायों के अपने मुद्दे हैं। हर समुदाय के पक्ष को समझे बिना लिया गया कोई भी नीतिगत फैसला समस्याएँ बढ़ा सकता है।

पूर्वोत्तर के आदिवासी समाज के लोग अपने आपको “ट्राइब” के नाम से बुलाते हैं।[61] वे ‘आदिवासी’ शब्द से खुद को अलग करते हैं। अतः इस शोध प्रबंध में हम ट्राइब और ट्राइबल शब्द का उपयोग करेंगे।

---

[60] C-01: Population by religious community, Mizoram - 2011, Census of India, 2011, https://censusindia।gov।in/nada/index।php/catalog/11385

1. 5 लोक एवं लोककथा

'लोक' सामान्य लोगों का वह समूह है जो समान भाषा, परंपरा और भौगोलिक क्षेत्र साझा करते हैं। लोक की संवेदनाओं, मूल्यों, परम्पराओं, जिज्ञासाओं आदि की अभिव्यक्ति विभिन्न लोककलाओं में होती है। ये लोककलाएँ कथा, नृत्य, गीत, कहावतें, वस्त्र, शिल्प, गाथा, मिथक आदि रूपों में व्यक्त होते हैं। इसे सम्पूर्णता में लोकवृत, लोकसंस्कृति कहा जाता है। अंग्रेजी में इसके लिए 'Folklore' शब्द प्रचलित है। लोकसंस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष लोककथा है। लोककथाएँ लोक द्वारा वाचिक रूप से पीढ़ियों में संचारित कथाएँ होती हैं। ये कथाएँ लोक अपने सामूहिक चेतना से विकसित करता है और अगली पीढ़ी तक पहुंचाता है। लोककथाएँ किसी समाज की परम्पराओं, मूल्यों, रीती-रिवाज़ों की वाहक होती है। किसी समाज को समझने के लिए उसकी लोककथाएँ अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती हैं। लोककथाओं के द्वारा समाज पीढ़ियों में अपने मूल्यों को प्रवाहित करता है। लोककथाओं का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन माना जाता है। मनोरंजन के साथ-साथ लोककथाएँ समाज के नियमों के द्वारा नियंत्रित होती हैं और उन्हें नियंत्रित भी करती हैं। समाज के नियम और परंपरा लोककथाओं का विषय बनते हैं। साथ ही लोककथाओं द्वारा भी कई नियम और परंपराओं का विकास और प्रचलन आरंभ होता है। इनके अध्ययन के द्वारा सम्बंधित समाज की सामूहिक संवेदना को समझने का अवसर मिलता है। न सिर्फ कथाएँ, लोक के ज्ञान, अनुभव और कलात्मकता के अध्ययन

[61] Sanjib Baruah, In The Name Of The Nation, India and Its Northeast, The Invention of Northeast India Standford University Press, Standford, California, 2020, Page 34

से विकसित हुए अकादमिक क्षेत्र में ज्ञान की इस शाखा को ‘Folkloristics’ कहा जाता है।

विलियम जॉन थॉमस 1846 ई में सबसे पहले ‘Folklore’ शब्द का उपयोग किया। इनके बाद यूरोप में इस विषय पर कई काम हुए। यूरोप की उपनिवेशी शक्तियों के शासित राज्यों में इन्होंने मुख्य रूप से आदिवासी समुदायों की वाचिक परंपरा का अध्ययन बड़े स्तर पर किया। वैसे तो इनकी दृष्टि अधिकांशतः उपनिवेशी मानसिकता से ग्रसित ही रही, लेकिन इन्होंने लोकसाहित्य के संकलन और अनुवाद का महत्वपूर्ण काम किया।

त्रिलोचन पाण्डेय इस विषय के पृष्ठभूमि एवं इतिहास को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, “यूरोप एवं अमेरिका के अधिकाँश विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षा-संस्थानों में लोकवार्ता का अध्ययन इस समय अनुसंधान का एक रोचक विषय बनता जा रहा है। वैसे तो लोकवार्ता का विषय मूलतः सांस्कृतिक नृतत्व-शास्त्र (कल्चरल एन्थ्रोपोलॉजी) से संबंध रखता है फिर भी विगत शताब्दी में समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान, भाषा-शास्त्र एवं साहित्य का अनुशीलन करते समय इसकी महान उपयोगिया स्वीकार की जा रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि मानव मात्र के उदय काल से लेकर अध्यावधि समस्त पारंपरिक विश्वासों, आचार-विचारों, परम्पराओं और कलात्मक अभिव्यक्तियों को समझने के लिए लोकवार्ता ही सहायक होती है। भारत जैसे महान ऐतिहासिक देश में तो इस विषय के स्वतंत्र अध्ययन की आवश्यकता और भी अधिक प्रतीत होती है, क्योंकि

यहाँ मानव सभ्यता का इतिहास अपेक्षाकृत प्राचीन है, अखंडित है, तथा वैविध्यपूर्ण होने के साथ-साथ व्यापक प्रदेशों की इकाई में फैला हुआ है।"[62]

लोक, लोकवृत एवं लोककथाओं के बारे में कुछ विद्वानों के मत देखते हैं,

हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं, "'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम्य' नहीं है बल्कि नगरों और ग्रामों में फैली हुई, वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।"[63]

डॉ सत्येन्द्र के अनुसार "'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोक-तत्व कहलाते हैं।"[64] वे आगे लिखते हैं कि, "लोक-साहित्य मेरी दृष्टि में लोकवार्ता का एक अंग है। लोकवार्ता ने आज ठीक-ठीक एक विज्ञान का रूप ग्रहण कर लिया है। इसे लोकवार्ता तत्त्व या लोकवार्ता विज्ञान और अंग्रेजी में 'फोकलोरिस्टिक्स' कहते हैं।"[65]

कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार "'लोक शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। लोक शब्द से ही हिंदी के 'लोग' शब्द की व्युत्पति मानी जाती है जिसका तात्पर्य है सर्वसाधारण जनता।"[66]

---

[62] त्रिलोचन पाण्डेय, लोक साहित्य का अध्ययन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 1978, पृष्ठ 9

[63] हजारी प्रसाद द्विवेदी, जनपद, वर्ष 1, अंक 1, पृष्ठ 65

[64] डॉ। सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, 1981, पृष्ठ 3

[65] डॉ। सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, 1981, पृष्ठ 5

[66] कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ 8

वे 'फोकलोर' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, ''फोकलोर' के सन्दर्भ में 'फोक' शब्द का अर्थ 'असंस्कृत' लोग है। अंग्रेजी 'फोक' के लिए इसी अर्थ में हिंदी के 'लोक' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। दूसरा शब्द लोर (Lore)है जो ऐंग्लो सैक्सन 'लर' (Lar) शब्द से निकला हुआ है। 'लोर' का अर्थ 'नालेज' (ज्ञान) अथवा 'लर्निंग' (विद्या) होता है। अतः 'फोकलोर' का अर्थ हुआ सामान्य जनता का ज्ञान अथवा विद्या।"[67]

डॉ सत्येन्द्र के अनुसार ''लोकवार्ता शब्द हिंदी में अंग्रेजी के 'फोकलोर शब्द का पर्याय मान लिया गया। 'फोकलोर' शब्द का निर्माण एक अंग्रेज पुरातत्वविद विलियम जॉन थॉम्स (Thoms) ने 1846 ई. में किया था। पहले 'पॉपुलर एंटीक्विटीज' शब्द प्रयोग में आता था। पॉपुलर एंटीक्विटीज का अर्थ लोकप्रिय अथवा 'लोकव्याप्त पुरातत्व' था। अब 'फोकलोर' शब्द सर्वत्र ग्राह्य हो गया है। "[68]

त्रिलोचन पाण्डेय लिखते हैं, ''लोकवार्ता के सन्दर्भ में प्रयुक्त होने वाले दो अन्य शब्द हैं 'लोक साहित्य' तथा 'जनसाहित्य। भारतीय अध्येताओं ने चूँकि अभी तक इस सामग्री का साहित्यिक दृष्टि से विवेचन किया है अतः वे भारतीय लोकवार्ता के अध्ययन को इसी अर्थ तक सिमित रख कर उसे लोक-साहित्य कहना चाहते हैं किन्तु जैसा कि हम जानते हैं, लोक साहित्य, विशाल लोकवार्ता का केवल एक अंग है और उसके द्वारा सम्पूर्ण लोकवार्ता की प्रतीति कैसे कराई जा सकती है। लोकवार्ता की सामग्री का

[67] कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ 4-5
[68] डॉ। सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा, 1981, पृष्ठ 1

अध्ययन सामाजिक दृष्टि से, भाषा विज्ञान की दृष्टि से, नृतत्वशास्त्र की दृष्टि से या किसी और दृष्टि से किया जा सकता है।"[69]

डॉ स्वर्णलता के अनुसार "लोक-साहित्य में लोक-संस्कृति की झांकी मिलती है, और जन मानस की प्रकृत भावनाओं, स्वाभाविक आवेग-उल्लास का यथार्थ स्वरुप हमें इसी साहित्य में मिलता है।"[70]

राहुल सांकृत्यायन की मान्यता है कि "लोक-साहित्य के पीछे शिष्ट साहित्य की तरह एक लम्बी परंपरा है जो शिष्ट साहित्य से कहीं अधिक बड़ी है और अविच्छिन्न चली आई है। शिष्ट साहित्य भी बल्कि लोक-साहित्य की ही उपज है।"[71]

डॉ सत्येन्द्र द्वारा स्वीकृत लोकवार्ता शब्द की उपयोगिता पर प्रश्न उठाते हुए कृष्णदेव उपाध्याय कहते हैं, "फोकलोर के लिए हिंदी में 'लोक वार्ता' शब्द का प्रयोग किया जा रहा है जो नितांत भ्रामक तथा अशुद्ध है। कोई शब्द अथवा परिभाषा, अवाचक, अव्याप्ति तथा अति व्याप्ति आदि दोषों से रहित होनी चाहिए। ... हमारी राष्ट्रभाषा में 'फोकलोर' के लिए लोक संस्कृति शब्द का ही प्रयोग समुचित तथा उपादेय है।"[72]

श्रीचंद्र जैन के अनुसार "लोक-कथाएँ लोक-संस्कृति की संरक्षिका हैं। इनमें एक ओर लोक-मानस विविध रूपों में प्रतिबिंबित होता है और दूसरी ओर लोक-संस्कृति के समस्त उपकरण मुखरित हुए हैं। वस्तुतः किसी प्रदेश की सांस्कृतिक चेतना के अध्ययनार्थ

---

[69] त्रिलोचन पाण्डेय, लोक साहित्य का अध्ययन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 1978, पृष्ठ 92

[70] डॉ। स्वर्णलता, लोक साहित्य विमर्श, चम्पालाल रांका एंड कम्पनी, जयपुर, 1979, पृष्ठ 5

[71] रामनारायण उपाध्याय, लोक साहित्य समग्र, हिंदी प्रचारक पब्लिकेशन, वाराणसी, 1997, पृष्ठ 10

[72] कृष्णदेव उपाध्याय, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ VIII

लोक-कथाओं का अनुशीलन अनिवार्य माना गया है। लोक-कथा लोक-साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंग है।"[73]

डॉ स्वर्णलता लिखती हैं, "लोककथाओं के प्रकार अनेक हैं जैसे व्रत और त्यौहार सम्बन्धी, आरण्यक, भूत-प्रेत, जादू-टोने आदि की मनोरंजक कथाएँ, प्रेम गाथाएँ और वीर गाथाएँ आदि। किन्तु कौटुम्बभिक कथाएँ अपना विशेष स्थान रखती हैं जिनका प्रधान स्वर है उपदेश वृत्ति और मनोरंजन। पीढ़ी दर पीढ़ी बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ ये कहानियाँ बालक-बालिकाओं और बहू-बेटियों को सुनती चली आई हैं। ये कथाएँ जीवन के साथ संस्कारवत जुड़ी हुई हैं- उनमें अनेक व्यक्तियों की प्रतिभा का प्रकाश निहित है- जिससे भावी समाज को मार्गदर्शन मिलता है।"[74]

डॉ। बापूराव देसाई दिनेश्वर प्रसाद को उद्धृत हैं, "लोकसाहित्य का केंद्रीय लक्षण है सामुदायिकता। यह सामुदायिकता या लोकबद्धता केवल अनुष्ठान और क्रियामूलक गीतों, शिक्षापरक कहावतों और कथाओं या मनोरंजनात्मक पहेलियाँ, गाथाओं और कहानियों के रूप में ही नहीं दिखाई पड़ती, वरन इस बात में भी कि लोक रचनाएँ मौन पाठ की अपेक्षा लोकसाहित्य सदस्यों द्वारा या उनके बीच मुखर पाठ और प्रदर्शन के विषय हैं।"[75]

रविन्द्र भ्रमर लोक के बारे में कहते हैं, "इस शब्द के प्रचलित अर्थ दो हैं- एक तो विश्व अथवा समाज, और दूसरा जनसामान्य अथवा जनसाधारण। साहित्य अथवा संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करने वाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में

[73] श्रीचंद्र जैन, लोक-कथा विज्ञानं, मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1988, पृष्ठ 17

[74] स्वर्णलता, लोक साहित्य विमर्श, चम्पालाल राँका एंड कम्पनी, जयपुर, 1979, पृष्ठ 41

[75] डॉ। बापूराव देसाई, लोकसाहित्य विधा : शास्त्र और इतिहास, पराग प्रकाशन, कानपुर, 2015, पृष्ठ 19

इस शब्द का अर्थ ग्राम्य या जनपदीय समझा जाता है; किन्तु इस दृष्टि से केवल गाँवों में नहीं वरन नगरों, जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ वह मानव समाज जो अपने परंपरा प्रथित रीति-रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थावान होने के कारण अशिक्षित एवं अल्प सभ्य कहा जाता है, 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है।"[76]

डॉ। श्रीराम शर्मा लोक की परिभाषा देते हुए लिखते हैं, "यह शब्द अंग्रेजी के 'फोक' शब्द के समान स्वरुप के आधार पर गढ़ा गया होगा। 'लोक देवेच' की उक्ति का यही तात्पर्य होगा कि लोक में जो अशिक्षित होंगे, वे 'लोक' की परिसीमा में आते होंगे और शिक्षित वर्ग 'वेद' की सीमा में। आज का शिष्ट-साहित्य भी ऐसे ही शिक्षित लोगों का ही विशेष-क्षेत्र माना जा सकता है। अतएव 'लोक' शब्द अशिक्षित, अर्ध-शिक्षित, अर्ध सभ्य, असभ्य वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए, चाहे वे ग्रामीण क्षेत्र में निवास करते हों या नगरीय क्षेत्र में।"[77]

हिंदी में प्रचलित आज 'मिथक' वस्तुतः अंग्रेजी 'मिथ' (Myth) का पर्याय अथवा स्थानापन्न माना गया है। 'मिथक' शब्द संस्कृत 'मिथ' से बनता है। मिथ का संस्कृत अर्थ है 'रहसि' (जिससे रहस्य बनता है)।[78]

लोक अथवा लोकसाहित्य के सम्बन्ध में प्रचलित अधिकाँश विचार उपनिवेशी मानसिकता से प्रभावित प्रतीत होते हैं। 'लोक-शिष्ट' का विभेद अपने आप में पूर्वाग्रह से ग्रसित विभाजन है। यह तुलना इस बात की तरफ इंगित करने का प्रयास करती है कि

[76] डॉ। रवीन्द्र भ्रमर, हिंदी भक्ति साहित्य में लोक तत्व, भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1995, पृष्ठ 3
[77] डॉ। श्रीराम शर्मा, लोकसाहित्य : सिद्धांत और प्रयोग, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1973, पृष्ठ 3
[78] भगवतशरण अग्रवाल, मिथक, 'मिथक और भाषा' शम्भुनाथ (संपा।), हिंदी विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1981, पृष्ठ 17

लोक ‘शिष्ट’ या ‘सभ्य’ नहीं है। लोक एवं लोकसाहित्य पर लिखने वाले विचारकों ने लोक एवं लोकसंस्कृति के प्रति अक्सर असंवेदनशील भाषा और विचार का प्रयोग किया है। अक्सर लोक के सम्बन्ध में परिभाषा गढ़ते हुए कहा जाता है कि वे ‘सभ्यता से दूर’ हैं, इस तरह की परिभाषाएँ लोक एवं लोकसंस्कृति के प्रति पूर्वाग्रह से प्रेरित हैं। लोक एवं लोकसाहित्य पर विचार रखने वाले अधिकाँश शुरुआती विद्वान स्वयं लोकसंस्कृति का हिस्सा नहीं रहें हैं। ऐसे में लोक के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में वे अपने समुदाय और संस्कृति को रखते हैं जो बिलकुल ही अलग परिस्थिति और जीवन-दृष्टि वाले समुदाय होते हैं। यह अध्ययन का एक आधार हो सकता है लेकिन परेशानी तब आती है जब अध्येता अपने समुदाय के प्रति गर्विताबोध से ग्रसित होते हैं और अपने समुदाय और संस्कृति के लिए ‘शिष्ट’, ‘सभ्य’, ‘संस्कारी’ जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। दूसरी तरफ इनके द्वारा लोक के लिए ‘अनपढ़’, ‘असभ्य’ जैसे शब्दों का इस्तेमाल लोक द्वारा पीढ़ियों में अर्जित ज्ञान के महत्त्व को दरकिनार करती है। इस तरह का अध्ययन लोक एवं लोकसंस्कृति के महान परंपरा को नज़रन्दाज करता है। लोक एवं लोकसंस्कृति अपने आप में सम्पूर्ण हैं। लोक की तुलना में किसी और समूह को रख कर गढ़ी गई परिभाषाएँ न्यायोचित नहीं हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम लोक के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करते हुए उनको उनकी दृष्टि से देखने का प्रयास करें।

लोककथा लोक द्वारा वाचिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी प्रवाहित होने वाली कथाएँ हैं। इनके रचनाकार कौन होते हैं यह ज्ञात नहीं होता, बल्कि सामूहिक रूप से पूरे समाज को इसके सृजन और प्रसार का श्रेय जाता है। लोककथाएँ लोक की सामूहिक स्मृति का हिस्सा होती हैं। लोककथा किसी समाज के स्मृतियों की अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण

जरिया है। इन कथाओं में उनकी सामूहिक संवेदना की अभिव्यक्ति होती है। अतः लोककथाओं के अध्ययन से संबंधित समाज को समझने का अवसर प्राप्त हो सकता है।

आदिवासी समाजों में लोककथाएँ बेहद खास महत्त्व रखती हैं। अधिकाँश आदिवासी समुदाय वाचिक संस्कृति से बहुत गहराई के साथ जुड़े रहते हैं। उनकी परंपरा, इतिहास और सामूहिक स्मृति को संजो कर रखने का स्त्रोत वाचिक लोक संस्कृति ही है।

1.6 जेंडर : अवधारणा और इंटरसेक्शनल नारीवाद (Intersectional feminism)

'जेंडर' विमर्श की शुरुआत पितृसत्ता के अध्ययन से होती है। नारीवादी विचारकों ने पितृसत्ता को समझने की दिशा में अध्ययन और आन्दोलन दोनों से सहायता ली। जहाँ अध्ययन ने पितृसत्ता की जटिल समस्याओं और समाज की व्यवस्था को समझने का अवसर दिया वहीं इनसे प्रभावित होकर अपने नैसर्गिक अधिकार को समझने के बाद उसे पाने के लिए किये गए आन्दोलनों ने पितृसत्तात्मक शक्तियों और संस्थानों को विभिन्न स्तरों पर उनका हक देने के लिए मजबूर करना शुरू किया। नारीवादी विचारकों द्वारा 'जेंडर' की अवधारणा को समझना सामाजिक रूप से एक क्रन्तिकारी घटना थी। इसने महिलाओं को अधीन करने वाली जटिल सामाजिक संरचना को समझने का काम किया। नारीवादी विचारकों द्वारा यह स्थापित करना कि "प्रकृति से 'सेक्स' का वही रिश्ता है जो संस्कृति से 'जेंडर' का"[79]

'लिंग' और 'जेंडर' के भेद को स्पष्ट करना नारीवादी चिंतन का एक महत्वपूर्ण योगदान है। सेक्स शब्द पुरुष और स्त्री के बीच एक जैविक अर्थ की तरफ इशारा करता है जबकि जेंडर का ताल्लुक उसके साथ गुंथे सांस्कृतिक अर्थों है। नारीवादी विमर्श के लिहाज से इस फर्क को स्पष्ट करना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि महिलाओं की अधीनता को मोटे तौर पर स्त्री-पुरुष के बीच जैविक फर्क के आधार पर ही सही ठहराया जाता है। ऐसे दार्शनिक तर्क मौजूद हैं जो तमाम तरह के उत्पीड़नों को कुदरती या प्राकृतिक कह कर जायज ठहराते हैं। इस तर्क के अनुसार जो कुदरती है वह अपरिवर्तनीय भी है, लिहाजा

[79] निवेदिता मेनन, नारीवादी विचारधारा में सेंक्स/जेंडर विभेद, नारीवादी राजनीती संघर्ष के मुद्दे, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, 2011, पृष्ठ 8

जायज है। ऐसे तर्क जैविक निर्धारणवाद (Biological Determinism) कहा जाता है। जाति व्यवस्था और नक्सलवाद इस प्रवृत्ति के दो बढ़िया उदाहरण हैं क्योंकि दोनों विचारधाराएं इसी मान्यता पर आधारित हैं कि व्यक्तियों के कुछ समूह पैदाइशी तौर पर श्रेष्ठ हैं, और यह कि उनकी बौद्धिक क्षमता और निपुणताएं शेष लोगों से अधिक विकसित हैं। इसलिए समाज में उनकी उच्चतर हैसियत और सत्ता जायज है। जैविक निर्धारणवाद ही महिला उत्पीड़न को भी सदियों से वैधता प्रदान करता रहा है। इसलिए जैविक निर्धारणवाद को चुनौती देना नारीवादी राजनीति के लिए बेहद महत्वपूर्ण है।[80]

'अर्थव्यवस्था में स्त्री की भागीदारी और स्थिति कम आंका जाता है जबकि महिलाएँ पुरुषों से अधिक घंटे काम करती है परंतु चुकी उनके हर काम के लिए उन्हें बेतन नहीं मिलता है या फिर पुरुषों के तुलना में आधा वेतन ही मिलता है। ज़्यादातर महिलाएँ अवैतनिक काम में ही जुड़ी रहती है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर ही बनी रहती है।

मार्क्सवाद के नज़रिए से देखे तो यही आर्थिक असमानता, निर्भरता, निजी सम्पत्ति और राजनीतिक भ्रम ही पुरुषों और महिलाओं के बीच अस्वस्थ सामाजिक सम्बन्धों को जन्म देते हैं। मार्क्सवादी नारीवाद विचार निजी सम्पत्ति, लिंग असमानता और पूंजीवाद के दमन की आलोचना करता है। पूँजीवादी समाज में विवाद के पश्चात महिलाओं की अधीनता, तनाव और लिंगों के बीच आर्थिक और सामाजिक असमानता में वृद्धि होती है।

[80] वही,

मार्क्सवादी नारीवाद के अनुसार पुरुषों और महिलाओं के बीच एक संघर्ष दिखती है जिसे केवल पूंजीवाद की समाप्ति द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। मार्क्सवादी पूँजीपति व्यवस्था की सबसे बड़ी आलोचक है क्योंकि उनका मानना है कि पूँजीपति व्यवस्था में पूँजीपतियों को शोषण करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। मार्क्सवादी नारीवादी ने शोषण के अलावा अधीनता का मुद्दा भी उठाया है।

समाजवादी नारीवाद वर्ग और लिंग दोनो प्रथा को समाप्त करना चाहते हैं। वर्तमान सामाजिक संरचना से हर प्रकार के शोषण को समाप्त करना ही उनका उद्देश्य है। एक ऐसा समाज निर्माण करना चाहते है जिसमें स्त्री और पुरुष सामाजिक रूप से अप्रासंगिक हो, जहां समर्थक लिंग की भूमिका नगण्य हो। फ्रेडरिक एंगेल्स के ग्रंथ ओरिजिन ओफ़ द फ़ैमिली, प्राइवट प्रॉपर्टी एंड द स्टेट, (1884) में वे लिखे हैं कि महिलाएँ न केवल पुरुषों द्वारा शोषित की जाती है बल्कि वे पूँजीपति की निजी सम्पत्ति की संस्था द्वारा भी शोषित होती हैं। उनका यह कहना है कि स्त्री जाति का उद्धार सामाजिक क्रान्ति के परिणाम स्वरूप ही हो सकता है, जिसमें पूंजीवाद को जड़ से उखाड़ फेंका जाएगा और उसका स्थान समाजवाद ले लेगा। समाजवादी नारीवाद महिलाएँ आर्थिक और सामाजिक विषमताओं को दूर करने के लिए पुरुषों के साथ ही काम करना चाहती थीं। समाजवादी नारीवाद ने महिलाओं की समानता को प्राप्त करने के लिए एक मिश्रित सैद्धांतिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण का इस्तेमाल किया।

उदारवादी नारीवाद का दार्शनिक आधार व्यक्तिवाद के सिद्धांत में निहित है। उदारवादी नारीवाद महिलाओं को लैंगिक असमानता और उत्पीड़न से स्वतंत्र करना

चाहते है। उदारवादी नारीवाद मुख्य रूप से अपने स्वयं के कार्यों और विकल्पों के माध्यम से उनकी समानता दिखाने के लिए और बनाए रखने के लिए महिलाओं की क्षमता पर केंद्रित है, जो नारीवादी सिद्धांत का एक व्यक्तिपरक रूप है।

उदार नारीवाद में समाज की अवधारणा को महिलाओं के लिए अनुकूल करने हेतु स्वयं को बदलने की आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित किया गया है। उदारवादी नारीवाद व्यक्तिगत सशक्तिकरण पर बल देता है। महिला अधिकारों के संघर्ष के इतिहास में महिलाओं के निर्माण, समाज में उनकी अलग पहचान बनाने में उनकी आवाज़ का उपयोग करने में कई उदारवादी नरिवादीयों का सहयोग रहा।

रेडिकल नारीवाद महिलाओं की प्रथम उग्र समूह है जो अमेरिका में वामपंथी उग्र दलों में तत्कालीन माओवादी विचारों के प्रभावस्वरूप हुआ। रेडिकल नारीवाद मौजूदा राजनीति से सम्पूर्ण विमुक्त अपने अनुभूतियों और सृजनशीलता के द्वारा अपने विचार प्रकट करना चाहते हैं। पितृसत्ता को समझने के लिए रेडिकल या उग्रपरिवर्तनकारी नरिवादीयों ने व्यक्तिगत और राजनीतिक आलोचना का उपयोग किया है।'[81]

नारीवाद एक ऐसी वैचारिकी और आन्दोलन है जो यह मानती है कि पुरुष और स्त्री को समाज में बराबरी का अधिकार है। यह बराबरी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, यौनिक जैसे हर क्षेत्र में होनी चाहिए। नारीवादी आन्दोलनों एवं कुछ सामाजिक न्याय के प्रणेताओं ने कुछ हद तक इसमें सफलता भी पाई है। भारत के परिप्रेक्ष्य में देखें तो हिन्दू

[81] नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार, शुभा परमार, ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड, 2015

कोड बिल[82] के द्वारा डॉ भीमराव आम्बेडकर ने सदियों से पितृसत्ता और मनुवाद के विचारों द्वारा शासित महिलाओं को पहली बार संपत्ति में समानता का अधिकार देने का प्रयास किया। स्वाभाविक रूप से उन्हें संसद के पुरातनपंथी सदस्यों के विरोध का सामना करना पड़ा। किन्तु यह बिल स्त्री अधिकारों पर केन्द्रित बाद के कई कानूनों की पृष्ठभूमि बनी।

लेकिन दुनिया भर में नारीवादी आन्दोलन की मुख्यधारा का नियंत्रण श्वेत महिलाओं के पास रहा। भारत के सन्दर्भ में यह नियंत्रण सवर्ण महिलाओं के पास है, 'इंटरसेक्शनल फेमिनिस्म' एक ऐसी अवधारणा है जो यह मानती है कि दुनिया की सारी स्त्रियों की स्थिति समान नहीं हैं। इसलिए एक वर्ग के रूप में स्त्रियों को देखने की अपेक्षा उनके सामाजिक यथार्थ और परिस्थिति को ध्यान में रख कर स्त्रियों के बीच अन्य स्त्रियों की विशेष समस्याओं पर ध्यान दिया जाए। पश्चिम में यह आन्दोलन ब्लैक-नारीवाद के संघर्ष के माध्यम से तेज हुआ। उनका कहना था कि श्वेत महिलाओं की समस्या और ब्लैक महिलाओं की समस्या एक समान नहीं हैं। उनका सामाजिक यथार्थ अलग-अलग है। श्वेत महिला श्वेत पुरुष से कम सामाजिक ताकत रखती है लेकिन उसके पास अश्वेत पुरुष से अधिक ताकत है। अश्वेत महिलाएँ इस सामाजिक वर्गीकरण में सबसे अंत में आती हैं। अतः श्वेत और अश्वेत महिलाओं के मुद्दे अलग हो जाते हैं। भारत में सवर्ण महिलाओं और दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक आदि महिलाओं के मुद्दों और

[82] Komal Rajak, The Hindu Code Bill — Babasaheb Ambedkar and his Contribution to Women's Rights in India, https://dalithistorymonth|medium|com/the-hindu-code-bill-babasaheb-ambedkar-and-his-contribution-to-womens-rights-in-india-872387c53758

परिस्थिति की भी यही स्थिति है। भारत में नारीवादी आन्दोलनों का नियंत्रण मुख्यतः सवर्ण महिलाओं के पास रहा है। वे तय करती हैं कि किस मुद्दों पर बात होगी और किन मुद्दों पर नहीं। यह निश्चित है कि सवर्ण महिलाओं की सामाजिक स्थिति सवर्ण पुरुष के मुकाबले कमतर है, लेकिन ब्राह्मणवादी पितृसत्ता का स्वरुप ऐसा है कि अपने पुरुषों के अधीनता को स्वीकारने के फलस्वरूप उन्हें दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक पुरुष और महिलाओं से अधिक सामाजिक सत्ता मिलती है। यह सवर्ण महिलाओं की सामाजिक स्थिति को विशेषाधिकार देती है। पारंपरिक रूप से सवर्ण महिलाएँ अपने साथी सवर्ण पुरुषों के साथ जाति, धर्म एवं नस्ल के आधार पर भेदभाव करने में बराबर की जिम्मेदार रही हैं। ऐसे में सवर्ण महिलाओं और दलित, आदिवासी एवं अल्पसंख्यक महिलाओं के साझे संघर्ष की संभावना नगण्य हो जाती है। उनके मुद्दे और चिंता के बीच एक बड़ा सामाजिक फासला है जिसे अब तक के नारीवादी आन्दोलनों ने पर्याप्त जगह नहीं दी है। उदाहरण के तौर पर श्वेत एवं सवर्ण महिलाओं की एक लड़ाई अपने पसंद के कपड़े पहनने की है, उनको किसी के द्वारा अपने पसंद पर नियंत्रण पसंद नहीं है। किन्तु यह लड़ाई उन महिलाओं के कितना प्रासंगिक है जिन्हें पीने-नहाने के लिए साफ़ पानी तक नहीं मिल रहा है।

इन दोनों वर्गों के संघर्ष के बीच के अंतराल को समझने के लिए हमें त्रावनकोर राज्य के जातिवादी-स्त्रीद्वेश के विरुद्ध नांगेली (Nangeli) द्वारा किये गए प्रतिरोध का उदाहरण देख सकते हैं। पश्चिमी देशों में (Free the Nipple) आन्दोलन के द्वारा महिलाऐं स्तन को न ढकनें के अधिकार की मांग उठा रही हैं। उनके अनुसार अगर पुरुष बिना शर्ट के खुली छाती के साथ घूम सकते हैं तो स्त्रियाँ क्यों नहीं! यह आन्दोलन समाज के एक

वर्ग के लिए महत्व का है और कहीं न कहीं दोहरे पितृसत्तात्मक मूल्यों के खिलाफ वाजिब सवाल उठता है। भारत में भी कुछ रेडिकल नारीवादी इसके समर्थन में आवाज उठा रही हैं।[83] किन्तु ऐसे समाज में जहाँ दलित, आदिवासी महिलाओं पर सामाजिक सत्ता के बल पर प्रभुत्वशाली जातियों द्वारा लगातार शोषण किया जा रहा हो उनके लिए ऐसे आन्दोलाओं की शायद ही कोई प्रासंगिकता हो! करीब सौ साल पहले तक त्रावनकोर के सामंती राजाओं ने दलित स्त्रियों के स्तन ढंकने पर रोक लगा कर रखा था। अगर दलित स्त्रियाँ अपना स्तन ढंकती थीं तो वे उनके ऊपर अमानवीय मुलाकरम कर (Mulakaram/Breast Tax)[84] लगाते थे। इस नियम से स्त्री की जाति का पता आसानी से लग जाता था और उसके आधार पर उनका सतत शोषण किया जाता था। नांगली नाम की दलित महिला में 1900 ई. के शुरूआती दशक में इस जातिवादी प्रथा का प्रतिरोध करते हुए कर देने से मन कर दिया और अपने स्तन काट दिए। अतिरक्तस्राव के कारण उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद दलित समाज की तरफ से विरोध तेज हो गया और राजा को यह प्रथा पर रोक लगानी पड़ी। आज भी भारत में सामंतवाद के तत्व गहराई से मौजूद हैं। कुछ जाति के लोगों के पास अत्यधिक जमीन है तो बहुत अधिक लोग भूमिहीन हैं। भूमिहीन लोग इन नवसामंती लोगों की खेतों मजदूर बन कर काम करने को मजबूर हैं। इन कामों के लिए उन्हें उचित मूल्य भी नहीं मिलता। ऐसे जगहों पर हासियाकृत समाजों की

---

[83] Pooja Vidrohi, Free The Nipple: The Feminist, Political Act Of Defiance And Resistance By Women, https://feminisminindialcom/2021/08/05/free-the-nipple-women-body-policing/

[84] Shatakshi Jaiswal, WE SHOULD ALL KNOW ABOUT NANGELI AND HER REVOLT AGAINST THE BREAST TAX, https://inbreakthroughlorg/nangeli-revolt-breast-tax/

स्त्रियों की स्थिति बेहद ख़राब रहती है। उनके शारीरिक, मानसिक और आर्थिक शोषण की घटनाएँ बेहद आम हैं। पंजाब विश्वविद्यालय में गियान सिंह (Gian Singh) और उनकी टीम के द्वारा 'Socio Economic Conditions and Political Participation of Rural Women Labourers in Punjab' शीर्षक शोध प्रकाशित हुआ। इस शोध कार्य ने पंजाब जैसे कृषि प्रधान और संपन्न माने जाने वाले राज्य में दलित महिला खेतिहर मजदूरों की बेहद ख़राब स्थिति उजागर कर दिया है। पंजाब के 12 जिलों के 1017 घरों की ग्रामीण महिला मजदूर के बीच किये गए शोध में यह पता चला कि लगभग 90 प्रतिशत ग्रामीण महिला मजदूर दलित हैं, 7।08 प्रतिशत अन्य पिछड़े वर्गों से हैं और बांकी नाम मात्र की ग्रामीण महिला मजदूर सामान्य वर्ग से हैं। इन्हें बेहद खतरनाक और अमानवीय परिस्थितियों में बिना किसी सुविधा और सुरक्षा के कम मेहनताना पर काम करना पड़ता है।[85] यौन-उत्पीड़न के बारे में सवाल करने पर 5 प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उनके साथ यौन-उत्पीड़न हुआ है। इस सवाल पर 70 प्रतिशत महिलाएँ मौन हो गयीं और 24 प्रतिशत महिलाओं ने कहा कि उनके साथ ऐसा कभी नहीं हुआ है। प्रोफेसर गियान सिंह 70 प्रतिशत महिलाओं के जवाब न देने पर कहते हैं कि सामाजिक वर्जना, नौकरी से निकाल दिए जाने के डर से वे इसका जवाब देने में सहज महसूस नहीं करती हैं। यौन-उत्पीड़न की वास्तविक स्थिति और भी गंभीर है।

[85] Rajeev Khanna, Eye-opening study on Punjab's rural women labourers poses many questions in poll season, https://www।downtoearth।org।in/news/general-elections-2019/eye-opening-study-on-punjab-s-rural-women-labourers-poses-many-questions-in-poll-season-63687

'इंटरसेक्शनल नारीवाद' ने यह भी स्पष्ट किया है कि स्वयं हासियाकृत समाजों की महिलाओं की स्थिति और मुद्दों में भी अंतर है। दलित महिलाओं के मुद्दे आदिवासी महिलाओं के मुद्दों से कई मामलों में अलग हैं। अल्पसंख्यक महिलाओं को अलग तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। दलित महिलाओं का प्रमुख संघर्ष जातिवाद के खिलाफ है, वहीं अल्पसंख्यक महिलाओं का मुख्य संघर्ष साम्प्रदायिकता के खिलाफ है। आदिवासी महिलाओं का मुख्य संघर्ष उनके जल, जंगल, जमीन और अस्मिता के ऊपर गैर-आदिवासी ताकतों के बढ़ते अतिक्रमण के खिलाफ है। हमारे शोध क्षेत्र पूर्वोत्तर की आदिवासी महिलाओं का प्रमुख संघर्ष एक तरफ अपनी अस्मिता, पारंपरिक जमीन और प्राकृतिक संसाधनों पर तेज होते बाहरी अतिक्रमण से तो है ही, उनका संघर्ष नस्लवाद के खिलाफ भी है। और पिछले कुछ समय में पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों की महिलाऐं अपने समाज में अपनी राजनीतिक, सामाजिक स्थिति को सुधारने के लिए भी आवाज उठा रही हैं।

स्पष्तः जेंडर सम्बन्धी शोध करते समय हमें सम्बंधित समाज के मुद्दों को समझना आवश्यक है। विभिन्न समाजों की महिलाओं का सामान्यीकरण करके उचित जेंडर विमर्श नहीं संभव है। हमें उनके मुद्दों को उनकी नज़र ने देखना होगा। इस शोध कार्य के आरम्भ में शोधार्थी की शोध दृष्टि पश्चिमी जेंडर विमर्श से प्रभावित थी। किन्तु विश्व के आदिवासी, ब्लैक एवं पूर्वोत्तर के ट्राइबल विद्वानों एवं संघर्षशील एक्टिविस्ट लेखकों को पढ़ने सुनने के बाद शोधार्थी की शोध दृष्टि आदिवासी नारीवाद के शोध उपागम को अपना कर विकसित हो रही है। इस शोध कार्य में हम इसी शोध दृष्टि से शोध कार्य करेंगे।

पश्चिमी विचारों का अध्ययन भी किया जाएगा और उन्हें आदिवासी-नारीवाद के दृष्टि से देखने का प्रयास किया जाएगा।

अध्याय 2.

पूर्वोत्तर की लोककथाओ में स्त्री-पुरुष सत्ता-सम्बन्ध (Power Relation)

अध्याय 2. पूर्वोत्तर की लोककथाओ में स्त्री-पुरुष सत्ता-सम्बन्ध (Power Relation)

मनुष्य द्वारा विकसित समाज की अवधारणा और व्यवस्था के केंद्र में कुछ सत्ताएँ हैं, जिनके द्वारा समाज नियंत्रित होता आया है। ये सत्ताएँ अमूमन किसी समुदाय, क्षेत्र अथवा लिंग के अधीन होती हैं। मानव सभ्यता के विकास के क्रम में कुछ समाज, क्षेत्र और विशेष रूप से पुरुष लिंग ने सत्ता पर कब्ज़ा कर लिया। सत्ता के असंतुलित बंटवारे ने समाज के अधिकाँश लोगों को हाशिये पर धकेल दिया। ऐतिहासिक रूप से स्त्रियों के साथ यही हुआ। स्त्री के अधिकारों के दमन की लम्बी प्रक्रिया ने उन्हें समाज में पीछे धकेल दिया है। विभिन्न स्तरों पर परिवार और समाज द्वारा स्त्री पर थोपे गए नियंत्रण ने उनके विकास की प्रक्रिया को बाधित किया है। उनके व्यक्तित्व निर्माण पर पुरुष वर्चस्व को बरकरार रखने वाले सामाजिक मूल्यों का प्रभावी नियंत्रण स्थापित कर दिया गया है।

जेंडर और सत्ता का गहरा रिश्ता है। कई बार जेंडर अपने आप में सत्ता का प्रतीक बन जाता है। हम जानते हैं कि लिंग अथवा 'सेक्स' प्रकृति प्रदत्त है, एवं 'जेंडर' सभ्यता एवं संस्कृतियों द्वारा विकसित है। सभ्यताओं द्वारा विकसित जेंडर अपने साथ कुछ नियम लेकर आता है। यूँ कहें कि समाज द्वारा विकसित नियमों से जेंडर का निर्माण होता है। प्रकृति ने अगर स्त्री एवं पुरुष बनाया तो सभ्यता ने औरत और मर्द जैसे जेंडर का गठन किया। जेंडर की अवधारणा तय जिम्मेदारी (Role) पर टिकी होती है। समाज हर सेक्स के लिए निश्चित दायित्व और व्यवहार तय करता है। पारंपरिक रूप से दुनिया के अधिकाँश समाजों में औरतों के लिए घर के काम-काज, बच्चों के पालन-पोषण जैसी जिम्मेदारी तय

कर दी गयीं। वहीं मर्दों के लिए भोजन जुटा के लाना, पैसे कमाना, राजनीतिक, सामाजिक फैसलों आदि की जिम्मेदारी तय की गई। किसी समाज में जिम्मेदारियों के इस बंटवारे के बाद अक्सर कुछ काम को कम एवं कुछ को अधिक महत्वपूर्ण मानने की प्रक्रिया शुरू होती है। जिसके पास सत्ता होती है वह अपने काम को अधिक महत्वपूर्ण बता कर समाज एवं परिवार में अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है। इसी आधार पर काम का आर्थिक महत्व भी तय होता है। चूँकि पुरुषों के पास सत्ता रही है इसलिए उन्होंने अपने कामों को स्त्रियों के काम से अधिक आर्थिक महत्व का तय कर दिया है। इसका प्रमाण यह है कि स्त्रियों के श्रम की चोरी पूरी दुनिया में होती आ रही है। स्त्रियाँ अपने घरों में दिन भर में घंटों काम करती हैं लेकिन उसका कोई आर्थिक मूल्य नहीं है। समाज इसे स्त्रियों की जिम्मेदारी मान कर चलता है। जहाँ घरों के अन्दर के काम को व्यक्तिगत बता के उनके आर्थिक हकों का हनन किया जाता है वहीं बाहर नौकरी, मजदूरी, अभिनय जैसे तमाम पेशों से जुड़ी महिलाओं को पुरुषों के मुकाबले समान काम के लिए समान वेतन नहीं मिलता। इसके साथ-साथ कई समाजों में स्त्रियों के बाहर काम करने पर भी रोक रहती है। इस वजह से स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता बाधित हो जाती है और पुरुषों पर उनकी निर्भरता बढ़ती जाती है और ऐसे में दोनों जेंडर के बीच सत्ता और शक्ति का भारी असंतुलन उत्पन्न होता है। इनके अलावा अन्य जेंडर की स्थिति और भी गंभीर है। अधिकांश समाजों में उनको स्वीकार भी नहीं किया जाता है। उनके लिए सामाजिक शक्ति पाना बेहद कठिन हो जाता है।

'दूसरों के आचरण को अपने लक्ष्य के अनुसार प्रभावित करने की क्षमता को शक्ति कहते हैं। मेकाइवर ने अपनी पुस्तक "द वैब ऑफ गवर्नमेण्ट" में शक्ति को निम्न

प्रकार प्रस्तुत किया है- यह एक ऐसी क्षमता है जिसमें दूसरे से काम लिया जाता है या आज्ञा पालन करवाया जाता है। राबर्ट बायर्सटेड के अनुसार :- शक्ति, बल, प्रयोग की योग्यता है न की वास्तविक प्रयोग।

राजनीति विज्ञान में शक्ति का बहुत विस्तृत प्रयोग होता है इसके आयाम निम्न हैं :-

राजनीतिक शक्ति :- इसका सामान्य अर्थ समाज के मूल्यवान संसाधनों से है जैसे टैक्स, पुरस्कार, पद, प्रतिष्ठित, दंड आदि। सामान्य राजनीति में शक्ति का प्रयोग न्यायपालिका करती हैं जिसे हम शक्ति का औपचारिक अंग कहते हैं।

आर्थिक शक्ति :- इसका सामान्य अर्थ उत्पादनों के साधनों व धन से होता है आर्थिक शक्ति कई तरीकों से राजनीतिक शक्ति को प्रभावित करती हैं। मार्क्सवाद का मानना है कि ‘‘सब तरह की शक्ति आर्थिक शक्ति की नींव पर टिकी होती है।

विचारधारात्मक शक्ति :- इसका सामान्य अर्थ होता है कि विचारों का समूह जिसके आधार पर हमारे दृष्टिकोण का विकास होता है ये शक्ति लोगों की सोचने समझने के ढ़ंग को प्रभावित करती हैं।

शक्ति की संरचना एक ऐसी संकल्पना के रूप में की जाती है जिससे एक पक्ष दूसरे पक्ष पर अपना नियंत्रण स्थापित करना है। शक्ति संरचना के प्रमुख चार रूप होते हैं जो निम्न है:-

1. वर्ग प्रभुत्व का सिद्धांत :- इस सिद्धांत को देने वाले मार्क्सवाद है जिसका सामान्य अर्थ है कि समाज आर्थिक आधार पर वर्गों में बांटा हुआ है।

2. विशिष्ट वर्गीय सिद्धांत :- इसके अनुसार भी समाज शक्ति के आधार पर दो वर्गों में बांटा गया है।

विशिष्ट वर्ग (शक्तिशाली)।

सामान्य वर्ग (जिसके ऊपर शक्ति प्रभुत्व होती है।

3. नारीवादी सिद्धांत :- इस सिद्धांत का मानना है कि समाज में शक्ति के विभाजन का आधार लैंगिक है (स्त्री पुरुष में भेदभाव) समाज की सारी शक्ति पुरुष वर्ग के पास हैं उस शक्ति का प्रयोग महिला के ऊपर किया जाता है इसके लिए विश्व में समय-समय पर नारी मुक्ति आंदोलन प्रारंभ हुई।

4. बहुलवादी सिद्धांत :- यह सिद्धांत तीनों से अलग है इसमें सारी शक्ति किसी एक वर्ग के हाथों में न होकर अनेक समूह में बंटी होती हैं ये सिद्धांत शक्तिहिन व्यक्तियों को शक्ति संपन्न बनाकर समरस समाज की स्थापना पर जोड़ देता है।

इस आधार पर अगर हम सत्ता की अवधारणा समझने का प्रयत्न करें तो, सत्ता किसी व्यक्ति संस्था नियम आदेश का ऐसा गुण है जिसके कारण उसे सही मानकर स्वेच्छा से उसके निर्देशों का पालन किया जाता है। हेनरी फेयोल के अनुसार "सत्ता आदेश देने का अधिकार है और आदेश का पालन करवाने की शक्ति हैं"।

मैक्स वैबर ने सत्ता के तीन प्रमुख रूप बताए हैं जो निम्न हैं-

परंपरागत सत्ता- इस सत्ता के अनुसार यह माना जाता है कि जो व्यक्ति या वंश परंपरा के अनुसार सत्ता का प्रयोग कर रहा हैं सत्ता उसी के पास बनी रहनी चाहिए।

करिश्माई सत्ता ये सत्ता किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत गुणों और चमत्कारों पर आधारित है इसमें जनता उसी व्यक्ति के इशारे पर बड़े से बड़ा त्याग करने को तैयार रहती है इसमें सत्ता का आधार भावनाएं होती है। कानूनी तर्कसंगत सत्ता इसका आधार पद होता है व्यक्तित्व नहीं।'[86]

सत्ता के बारे में वेबर (Weber) कहते हैं कि सत्ता अधिकार, वर्चस्व, शोषण से जुड़ी है और एक ऐसी इकाई है जो किसी व्यक्ति या समूह के पास हो सकती है। शक्ति, संक्षेप में, एक व्यक्ति, समूह या राष्ट्र द्वारा दूसरों के व्यवहार और जीवन की स्थितियों पर नियंत्रण है।[87]

नीलिमा श्रीवास्तव लिखती हैं, "अधिकांश देशों में पुरुषों के मुकाबले स्त्रियाँ दोहरा बिना-वेतन काम करती है। वैश्विक स्तर पर स्त्रियों के स्वास्थ्य की स्थिति पुरुषों से ख़राब है, आज के युद्ध के माहौल में सैनिकों से अधिक हिंसा की शिकार आम महिलाऐं और बच्चे हैं। ये तथ्य उस यथार्थ को दर्शाते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों के मुकाबले ज्यादा शक्तिहीन हैं जो उन्हें शोषण और दमन का आसान शिकार बनाता है।"[88]

---

[86] https://www।pehlestudy।com/power-authority-legitimacy/

[87] Nilima Srivastava, MWG-002 Gender and Power, https://egyankosh।ac।in/handle/123456789/1384

[88] Nilima Srivastava, MWG-002 Gender and Power, https://egyankosh।ac।in/handle/123456789/1384

समाज की इकाई के रूप में परिवार में सत्ता के समीकरण को समझना आवश्यक है। जिस तरह से समाज में सत्ता का केन्द्रीकरण होता है वैसे ही परिवार में भी सत्ता केन्द्रित रहती है। मुख्यतः यह सत्ता पुरुषों के पास होती है। किसी परिवार में आर्थिक फैसले कैसे लिए जाएंगे, विवाह के कौन तय करेगा, भोजन में क्या बनेगा, परिवार के सदस्यों के अवागमन अथवा 'मोबिलिटी' किसकी निगरानी में होगा यह कुछ मुद्दें हैं जिनके आधार पर परिवार में सत्ता के बंटवारे को देखा जा सकता है।

सत्ता के कुछ तत्त्व शोषितों के खेमे में भी आवाजाही कर सकते हैं। इसलिए हमें यह भी देखना चाहिए कि क्या शोषित तबका बिलकुल शक्तिहीन है या उसके पास भी दमन से लड़ने के कुछ 'टूल्स' हैं। इस तरह से हमें समाज को गहरे से समझने का अलग मौका मिलता है।

किसी समाज के अध्ययन के दौरान यह जानना भी आवश्यक होता है कि दो अलग वर्गों, लिंगों समुदायों के बीच माहौल कैसा है? क्या वे सौहार्द के साथ रह रहे हैं? उनके बीच कड़वाहट है? उनके बीच गहरी दोस्ती और साहचर्य है? ये कुछ महत्वपूर्ण सवाल हैं जिसको ध्यान में रखना चाहिए।

2.1 सत्ता का समीकरण और जेंडर

सत्ता की अवधारणा अपने साथ नियंत्रण, आधिपत्य और दमन लेकर आती है। अगर सत्ता है तो ऐसे लोग अवश्य होंगे जो अन्य लोगों पर नियंत्रण, आधिपत्य एवं दमन कर रहे होंगे। समाज में आम तौर पर सत्ता का बंटवारा एक तरफ केन्द्रित होता है। कुछ लोगों के पास बहुत अधिक शक्ति होती है एवं अन्य के पास थोड़ी बहुत। काम के बंटवारे में भी सत्ता काम करती है। जिनके पास सत्ता होती है वही तय करते हैं किसके काम का स्वरुप क्या होगा। कौन सा काम अधिक महत्वपूर्ण माना जाएगा। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह समाज के सत्तासीन लोग तय करते हैं कि किस काम को महत्वपूर्ण और किसको कम महत्वपूर्ण माना जाएगा।

पितृसत्ता जब सत्ता का केन्द्रीकरण करता है तो उसके मूल में पुरुष होता है। पुरुषों का अपने पास लगभग सारी ताकत का होना वैश्विक परिघटना है। लेकिन अब स्त्रियाँ अपने हक के लिए आवाज़ उठाना शुरू कर चुकी हैं। ऐसा नहीं है कि पूर्व में स्त्रियों ने बिना किसी ताकत या संघर्ष के जीवन बिता दिया हो। या तो उन्होंने संघर्ष किया, सीधी लड़ाई लड़ी या फिर उन्होंने पितृसत्तात्मक मूल्यों के बीच से अपने हक को सुनिश्चित करने के साधन जुटाने के प्रयास किये। जैसे स्त्रियों का गहनों के प्रति विशेष लगाव को कई लोग इस बात से जोड़ के देखते हैं कि यह दरअसल स्त्रियों के लिए सामाजिक सुरक्षा का साधन होता है।

पूर्वोत्तर के समाजों में स्त्रियाँ पुरुषों पर आर्थिक रूप से बहुत निर्भर हो ऐसा नहीं लगता है क्योंकि कृषि एवं वाणिज्य में अक्सर स्त्री-पुरुष दोनों की भागीदारी दिखती है।

लेकिन एक समाज के सदस्य के रूप में दोनों किस तरह से रहते हैं इसे देखना आवश्यक है।

उत्तर-भारतीय समाज में स्त्री की पारंपरिक स्थिति के संबंध में अक्सर पौराणिक संदर्भों में यह अवधारणा दी जाती है कि स्त्री को यहाँ देवी का दर्जा दिया गया है। समाज में अक्सर यह कहा जाता है कि जहाँ स्त्री की पूजा की जाती है वहां देवताओं का वास होता है। कुमकुम राय ने इस अवधारणा को कपोल कल्पित साबित किया है।[89] शास्त्रीय संदर्भों में यह कहा जाता है कि वैदिक युग में महिलाओं को अत्यधिक सम्मान और समानता प्राप्त था। गार्गी, मैत्रेयी आदि के यश का उदाहरण दिया जाता है। किन्तु नारीवादी विचारकों ने में स्त्री की स्थिति संबंधी इन अवधारणाओं को तथ्यहीन बता कर खारिज किया गया हैं। उमा चक्रवर्ती गार्गी – याज्ञवल्क्य शास्त्रार्थ की वास्तविक परिणति को उजागर करते हुए कहती हैं,

"याज्ञवल्क्य से गार्गी के प्रश्न कहीं ज्यादा सूक्ष्म और तीखे हो उठते हैं। मगर, याज्ञवल्क्य गार्गी द्वारा इनाम में एक हजार गायें जीत लिए जाने की स्थिति के लिए तैयार नहीं है। बहस के इस मोड़ पर वह गार्गी को धमकी देता है कि यदि गार्गी ने उससे प्रश्न पूछना बंद नहीं किया तो उसे जान से हाथ धोना पड़ेगा, और इस तरह गार्गी मुकाबले से बाहर हो जाती है।"[90]

---

[89] कुमकुम राय, नारीवादी राजनीति : संघर्ष के मुद्दे (संपादक) साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001, पृष्ठ 137

[90] उमा चक्रवर्ती, वही

हमारा अध्ययन क्षेत्र संसार के उन कुछ क्षेत्रों में से है जहाँ आज भी मातृवंशीय सामाजिक व्यवस्था का पालन किया जाता है। यह भी जान लेना होगा कि मातृवंशीय समाज पितृसत्तात्मक समाज का विपरीत नहीं होता। इसमें सिर्फ वंश और संपत्ति की देखरेख स्त्री दी जाती है। साथ ही पूर्वोत्तर में पितृसत्ता का जो स्वरुप है वह शेष भारत की पितृसत्ता से अलग प्रवृत्तियां रखता है।

ऐसा नहीं है कि अगर समाज में स्त्री के पास राजनीतिक एवं सामाजिक मामलों में भाग लेने का अधिकार नहीं है तो स्त्रियों की बात आगे पहुँचने से रुक जाती है। प्रोफसर लूसी जेहोल कहती हैं, "अगर कोई पुरुष सामाजिक मुद्दों में फैसला लेने जा रहा होता है तो उसकी पत्नी अपने घर में उसे उन बातों के लिए अक्सर राजी करने की कोशिश करती है जो उसके हिसाब से सही है।"[91] कह सकते हैं कि भले ही स्त्रियों की प्रत्यक्ष भागेदारी सामाजिक फैसलें लेने में नहीं होती, वे अप्रत्यक्ष रूप से अपनी बात रखने की भरसक कोशिश करती है।

पूर्वोत्तर भारत सांस्कृतिक दृष्टी से बेहद समृद्ध क्षेत्र है। यहाँ की अधिकाँश जनसंख्याँ आदिवासी है। लगभग उन्नीसवीं शताब्दी तक सभी आदिवासी समुदाय के पास अपनी लिपि न होने के कारण पारंपरिक रूप से इस क्षेत्र में साहित्य की अभिव्यक्ति का मूल साधन वाचिक परंपरा ही रही है। अतः यहाँ स्वाभाविक रूप से लोकसाहित्य का समृद्ध भंडार मिलता है। साथ ही लिखित इतिहास के अभाव में लोकसाहित्य, मिथक-कथाएँ इनके इतिहास और सामाजिक संरचना को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम बन जाता है।

[91] शोधार्थी द्वारा शिलांग में प्रो। लूसी जेहोल के साथ साक्षात्कार से प्राप्त।

वर्तमान संदर्भों में पूर्वोत्तर के बारे में जो थोड़ी-बहुत समझ विकसित हो रही है उसमें सामान्यीकरण की प्रवृत्ति बहुत दिखती है। स्त्री के संदर्भ में यह सबसे अधिक है। कमोबेश लोग यह मान कर चलते हैं कि, ''पूर्वोत्तर में स्त्री बराबरी की स्थिति में रहती है, उनके साथ किसी भी प्रकार का अत्याचार नहीं होता, वे अपने फैसले लेने के लिए स्वतंत्र होती हैं'' आदि अस्मिता संबंधित तमाम प्रश्नों के पूर्वाग्रही उत्तर। किन्तु पूर्वोत्तर में स्त्री की कोई सामाजिक समस्या नहीं है, यह धारणा न सिर्फ भ्रांत है बल्कि स्त्री की समस्याओं से मुह मोड़ कर उनकी स्थिति को गंभीर बनाने का काम कर रही है।

खासी समाज में वंश का स्वामित्व पूर्ण रूप से स्त्री के पास होता है। मातृस्थानिक होने के कारण स्त्री अपने माँ के घर ही रहती है। सबसे छोटी बेटी मातृक संपत्ति पाती है, किन्तु उसकी भूमिका इसके देखरेख तक है। अपनी इच्छा से वह मातृक संपत्ति नहीं बेच सकती। इसका निर्णय सबसे बड़े मामा की अनुमति से ही लिया जा सकता है। खासी की मातृवंशीय सामाजिक व्यवस्था स्त्री को केवल वंश का स्वामित्व प्रदान करती है।

स्त्री की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हकों का अतिक्रमण कोई नई बात नहीं है। आज के समय में विभिन्न समाजों में स्त्री के दमन के खिलाफ आवाजें उठने लगीं हैं। इस दौर में अपने आस-पास पितृसत्तात्मक समाजों से घिरे रहने पर भी खासी समाज का अपनी मातृवंशीयता को बरकरार रखना बहुत महत्व रखता है। खासी जनजाति उन गिने चुने समुदायों में से है जो आज भी मातृवंशीय सामाजिक व्यवस्था का पालन करती हैं। "मातृवंशीय समाजों में स्त्री को सम्मान प्राप्त है तथा पुरुषों का दमन भी नहीं होता। अर्थात ये समाज स्त्री-पुरुष सम्बन्ध के संदर्भ में आधुनिक मूल्यों

के अधिक निकट है।"[92] वहीं पितृसत्तात्मक समाज पुरुषों के वर्चस्व और महिलाओं के दमन को प्रश्रय देता है यह तथ्य भी छुपा नहीं है। पारंपरिक रूप से ही संपत्ति और वंश स्त्री के नाम रहने से खासी महिलाएं पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से अपेक्षाकृत मज़बूत स्थिति में हैं। हाँ स्त्री के राजनीतिक हकों के मामले में यह समाज पिछड़ा हुआ है। Thomas Menamparampil लिखते हैं- "सदियों के अनुभव ने खासी महिलाओं को किफायती और जिम्मेदार प्रशासक बना दिया है। यद्यपि महिलाएं घर की कुशल रक्षिका है फिर भी वे राजकीय मामलों में कभी भी सक्रिय भूमिका में नहीं रहीं। इस क्षेत्र में पुरुषों का पूरी तरह से वर्चस्व था।"[93] निश्चित रूप से राजनीतिक मसलों में स्त्री के दखल पर रोक प्रगतिशील विचार नहीं कहा जा सकता। हर समाज में कुछ न कुछ कमियाँ होती हैं। खासी समुदाय में स्त्री को प्राप्त अन्य अधिकारों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। और कह सकते हैं कि स्त्री और पुरुषों के अपने-अपने अधिकार अंततः कमोबेश एक संतुलन बनाने की कोशिश करते है। 'रेडिकल इक्वलिटी' तो नहीं किन्तु खासी समाज का ढांचा ऐसा है जिसमें स्त्री और पुरुष अपेक्षाकृत संतुलित और समानता का जीवन जीते हैं। और यह निश्चित रूप से प्रगतिशील व्यवहार है।

खासी समाज में वंश के पुत्री द्वारा आगे बढ़ने के कारण स्त्री का सामाजिक महत्व बढ़ जाता है। 'पुत्री का होना उल्लास का विषय होता है। लेकिन खासी समाज में पुत्र की उपेक्षा ही होती है ऐसा नहीं कहा जा सकता। मामा द्वारा घर के संपत्ति के मामलों में फैसला लेना मातृवंशीय समाज में पुरुषों के महत्व को भी स्थापित कर देता है। इस कारण

[92] शर्मा श्रीनाथ, 'जनजातीय समाजशास्त्र' मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2005 पृष्ठ 22

[93] Thomas Menamparampil, 'An Introduction to North-East India', Peace Centre, Guwahati, 2013, Page 4

बेटा हो या बेटी, परिवार में लैंगिक दुराग्रह का वैसा स्वरुप खासी समाज में नहीं दिखता।’[94] लैंगिक निरपेक्षता के इस पहलू की छाप यहाँ के लोकसाहित्य पर दिखती है। ’का नाम और बाघ’[95] की कथा में बाघ गर्भवती स्त्री की जान इस शर्त पर छोड़ देता है कि होने वाली संतान अगर बेटा होगा तो वह उसे मित्र बना लेगा और अगर बेटी होगी तो वह उसे अपने साथ लेकर जाएगा। जन्म से पहले गर्भवती माँ इस चिंता में नहीं दिखती कि उसकी होने वाली संतान बेटा होगा या बेटी बल्कि यह कि बाघ से वह अपनी संतान की रक्षा कैसे करेगी? माँ की चिंता समाज में लड़की के प्रति सोच को अभिव्यक्त करती है। खासी समाज में लड़की का महत्व बहुत अधिक है, इसलिए बेटी के जन्म के बाद माँ उसे बाघ से बचा कर रखने का हर संभव प्रयास करती है। सामाजिक आग्रह की अभिव्यक्ति लोककथाओं में देख कर कहा जा सकता है कि सामाजिक व्यवस्था इस लोककथा के स्वरुप को गढ़ रहा है। ’का लिकाई’[96] की कथा खासी समाज में माँ-संतान के बीच के संबंध की गहराई को व्यक्त करती है। खासी समाज में माँ अपने संतान से जिस गहराई से जुड़ी रहती है उसकी अभिव्यक्ति यह कथा करती है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि साहित्य समाज की सारी प्रचलित धारणाओं का अनुसरण करता रहेगा। समाज के विपरीत चित्र भी दिख सकते हैं। लिकाई की कथा में ही सौतेला पिता बेटी को मार कर

---

[94] Valentina Payntein, Gender Preference in Khasi Society: An Evaluation of Tradition, Change and Continuity, Indian Anthropologist, Voll 30, No 1/2 June-Dec 2000, Indian Anthropological Association, page 30

[95] Kynpham Sing Nongkynrih, Around the Hearth Khasi Legends, 2007, page 41-54

[96] Kynpham Sing Nongkynrih, Around the Hearth Khasi Legends, 2007, page 111-128

उसका मांस पका देता है। जिस तरह से समाज का कोई निश्चित चेहरा नहीं होता, उसी तरह साहित्य में भी बहुत तरह की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति होती है।

मातृवंशीय खासी समाज के प्रति यह धारणा रहती है कि यहाँ स्त्री पूर्णतः स्वतंत्र है। तिपलुट नोंगबरी कहती हैं- "यहाँ स्त्री को परंपरा के पालन की जिम्मेदारी तो दे दी गयी है किन्तु अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए अधिकार नहीं दिया गया है। यह उन्हें गंभीर रूप से मामा के ऊपर आश्रित कर देता है।"[97] किन्तु स्त्री के पास संपत्ति का होना और बिलकुल न होना एक प्रभावशाली विकल्प है। जहाँ स्त्री को बिलकुल अधिकार नहीं होगा वहाँ की अपेक्षा अधिकारों का वंश के रूप में, संपत्ति के संरक्षिका के रूप में आने से स्थिति में परिवर्तन तो आ ही जाता है।

जेंडर विमर्श ने इस बात को स्थापित किया है कि समाज में सारी स्त्रियाँ कमज़ोर और सारे पुरुष ताकतवर नहीं हैं। सत्ता और शक्ति की आवाजाही विभिन्न जेंडर के बीच संभव है। 'एक पिता जिसने अपने दोनों बेटों का परित्याग कर दिया'[98] मिज़ो लोककथा में हम सत्ता और शक्ति के विभिन्न स्वरुप को देख सकते हैं। इस कथा में एक दुष्ट और निर्दयी आदमी था। उसकी पत्नी जिससे उसे दो बेटे थे, की मृत्यु हो चुकी थी। उस आदमी ने दूसरी शादी कर ली। सौतेली माँ को दोनों बेटे पसंद नहीं थे। वह अक्सर अपने पति से पूछती, "आप किसे ज्यादा मानते हो, मुझे या अपने बेटों को?" पति कोई जवाब नहीं

---

[97] Tiplut Nongbri, Gender and The Khasi family structure: some implication of the Meghalaya Succession Act, 1984, Sociological Bulletin, Vol 37, March-September, 1988, page 77

[98] B Lalthangliana, Culture and folklore of Mizoram, Publication division, New Delhi, 2005, page 326

देता। एक दिन पत्नी खेतों में गई, वहाँ उसे बहुत से मच्छरों ने काट लिया जिससे उसका चेहरा और शरीर का कई अन्य हिस्सा सूज गया। लेकिन उसने अपने पति से कहा कि उसके बेटों ने उसपर हमला किया जिसके कारण वह उसे चोटें आई है। इसके साथ ही उसने पति से यह मान की कि वह फैसला करे कि वह किसे अधिक प्यार करता है, अगर वह उसे ज्यादा प्यार करता है तो उसे अपने बेटों का परित्याग करना होगा। पति ने कहा कि वह पत्नी को ही अधिक प्यार करता है और अपने बेटों का परित्याग करने पर राजी हो जाता है। वह उन्हें लेकर जन जंगल जाता है, एक बड़ा सा गड्ढा खोदता है और अपने बेटों को कहता है कि वे इसमें ही रहे, यह गड्ढा उन्हें बारिश-तूफान से उन्हें सुरक्षित रखेगा। और वह चला गया। बच्चों ने गड्ढे से निकलने की कोशिश की लेकिन वह बहुत ऊँचा था। उनके पास एक चाकू थी, जिसकी मदद से उन्होंने सीढ़ी बनाई और बाहर निकल गए। लेकिन तब तक वे भूख और थकावट से बेहाल हो गए थे। उन्होंने जंगल में अपनी स्थिति और घर का रास्ता जानने की कोशिश की। बड़ा भाई एक लम्बे पेड़ पर चढ़ गया। उसे वहाँ अन्डो से भरा एक घोंसला मिला उसने अपने छोटे भाई के लिए अंडा नीचे फेंका लेकिन वे वे सारे गिर कर फूट गए। फिर उसने एक अंडा अपने मुह में लिया और अपने भाई को देने के लिए नीचे उतरा। लेकिन बदकिस्मती से वह अंडा उसके गले में फस जाता है। उसे अंडा निगलना पड़ता है। इसका असर यह हुआ कि वह एक चिड़िया में बदल जाता है। चिड़िया ने लड़के को कहा कि उसके उड़ने पर वह उसकी परछाई के सहारे घर की तरफ चले। लेकिन घने जंगल के कारण उसे परछाई नहीं दिखी और वह जंगल में भटक गया। फिर उसे एक जंगली बिल्ली मिली, उसने उससे घर का रास्ता पूछा, बिल्ली ने उसे कहा कि वह थोड़ा इंतजार करे जब तक वह एक पक्षी का शिकार कर ले ताकि वह

उसके पंख गिरा कर उसे जंगल से बाहर का रास्ता दिखा सके। बिल्ली ने अपना वचन निभाया और लड़के को एक गाँव ले आई। लड़का उसी गाँव में रहने लगा और बड़ा होने लगा। उसने इतने पैसे बचा लिए कि वह एक बड़ा भोज दे सके। इस भोज में उसने इंसान के साथ-साथ पशु-पक्षियों को भी निमंत्रण दिया गया, उसे उम्मीद थी कि उसका पक्षी-भाई भी आएगा। उसका भाई आया भी। लेकिन उसने अपने भाई से कहा कि वह उसके साथ इससे और भी बेहतर जगह चले। उसने सभी पंक्षियों से आग्रह किया कि वे अपने कुछ पंख उसे दे दे ताकि वह उन्हें लगा कर उड़ सके। पर्याप्त पंख हो जाने के बाद उसने उन्हें लगा लिया और अपने भाई के साथ एक बेहतर दुनिया की तरफ उड़ चला।

पूर्वोत्तर की लोककथाओं में इंसान के पंक्षी बनने की परिघटना कई समुदायों में देखने को मिलती हैं। संभव है कि यह दुनियावी मुश्किलों से मुक्ति की कामना की अभिव्यक्ति हो।

खासी समाज में राजपरिवार के पृष्ठभूमि की कथाओं में स्त्री तो कमोबेश अपने हक से समझौता करती नजर नहीं आती[99] लेकिन इसके लिए उन्हें आजादी हो ही यह निश्चित नहीं है। खासी लोककथाओं में यू मनिक रायतांग लोककथा बहुत लोकप्रिय है। वाचिक रूप में मानस में बसी इस कथा का 1899 ई में पहली बार लिपिकरण होने के बाद से अब तक इसपर नाटक, कविता, लघु उपन्यास, दो फिल्में बन चुकी हैं।[100] यह लोकप्रिय कथा एक प्रेम कथा है जिसमें हम आम खासी मानस में सहज प्रेम के प्रति करुणा का भाव

[99] 'मनिक रायतांग' कथा में रानी ने अपनी इच्छा को प्रकट किया और प्रेम भी किया

[100] Lamare Sylvanus, 'Orality and Beyond: the story of U Manik Raitong', Sen Soumen (editor) 'orality and beyond' sahitya akademi, new delhi, 2007, page 6

देखते हैं। राजदरबार में भले ही इस तरह के प्रेम के विरुद्ध कठोर नियम रहे हों, आम खासी सामूहिक रूप से इस प्रेम को स्वीकार करते हैं। उसके दर्दनाक अंत पर रोते हैं और इस प्रकार के प्रेम के सम्मान में एक स्थायी प्रतीक को रच कर उसकी याद को स्थायी बना लेते हैं। कथा का सार इस प्रकार है[101] -

एक सीएम (राजा) बहुत दिनों से अपने राज्य के भ्रमण पर निकला हुआ था। वर्षों बीत गए लेकिन उसकी कोई खबर नहीं आ रही थी। उसकी युवा रानी अकेलेपन के कारण अनिद्रा की शिकार हो गयी। एक रात उसने दूर से आती बांसुरी की बहुत ही मधुर तथा हृदयस्पर्शी धुन सुनी। वह उस धुन के पीछे चल पड़ी। बांसुरी बजाने वाला यू मनिक रायतांग था। रायतांग अनाथ और बहिष्कृत था। पूरे दिन राख मिट्टी से सने रहने वाला रायतांग रात में अपने सुन्दर पोशाक में अद्भुत लग रहा था। रानी को उससे प्रेम हो गया। उसने शुरुआत में मना किया लेकिन रानी के अटूट प्रेम को देखने के बाद उसे भी प्रेम हो गया। कुछ समय के बाद राजा के वापस आने का समाचार आया। रानी एक बेटे को जन्म दे चुकी थी। हर ओर सन्नाटा छा गया कि राजा क्या फैसला लेगा। राजा को यह बात नागवार गुजरा और उसने राज्य के हर पुरुष को एक केला लेकर महल में बुलाया। कहा गया कि बच्चा जिससे केला लेगा वही उसका पिता होगा। बच्चे ने किसी से केला नहीं लिया। किसी को उम्मीद नहीं थी फिर भी याद करके रायतांग को भी बुलाया गया। बच्चा उसे देखते ही हँसने लगा और केला ले लिया। राजा ने रायतांग को ज़िंदा जलाने की सजा सुनाई। अगले दिन चिता तय्यार की गयी। रानी को महल में बंद कर दिया गया। रायतांग

---

[101] सावियान विजोया,'यू मनिक रायतांग, कैस अकील (अनुवाद) गुप्ता रमणिका (संपा।) पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन मिथक एवं लोककथाएं' नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 149-152

सुन्दर पोशाक में सजा हुआ बांसुरी बजाता हुआ आता है। वहां मौजूद लोगों की भीड़ यू मनिक की मनोहारी छवि, उसके अप्रतिम संगीत तथा उसके प्रेम के त्रासद अंत से अभिभूत हो रो पड़ी। रानी भी बिल्ली के पैरों में पाजेब बाँध खिड़की से कूद उसी चिता के पास आ गयी। मनिक ने अपनी बांसुरी को पास में ही जमीन में उलटा गाड़ दिया। और दोनों अग्नि में कूद गए। हर दिशा में रुदन-चीत्कार और हलचल मच गयी। उस पहाड़ी पर जिस जगह उन दो प्रेमियों ने मृत्यु का वरण किया था, आज भी वहाँ पर उल्टे बांस के झुरमुट विद्यमान हैं। ये नीचे की ओर बढ़ते हैं। कहते हैं, ये बांस उसी बांसुरी से जन्मे हैं।

इस कथा में दरबार की कठोरता अमानवीय है। लोक इसका सीधा विरोध कर पाने की स्थिति में नहीं है। लेकिन अपनी भावना के साथ वह इन प्रेमियों के साथ ही है। रानी के अकेलेपन का जिम्मेदार राजा था। उसकी जरूरतों से खासी समाज वाकिफ था। मनिक के साथ उसके सम्बन्ध को समाज ने अपनी सामूहिक स्वीकृति अपने सामूहिक रुदन से दे दी। खासी जनजाति के प्रगतिशील विचार का यह खूबसूरत पक्ष निश्चित रूप से महत्वपुर्ण है। इतना ही नहीं इस प्रेमकथा से जुड़ा उल्टे बांस के झुरमुट वाले प्रतीक के माध्यम से यह आज भी खासी समाज में सहज मानवीय प्रेम की स्वीकार्यता को स्थापित करती है।

इस कथा का एक और पाठ ’मनिक रायतांग की कथा’[102] है। इस पाठ में महदोई ने मनिक रायतांग से प्रेम किया था। ’सीएम’ दो-तीन वर्षों से अनुपस्थित था। इस स्थिति में किसी स्त्री के भीतर उठने वाली सहज इच्छा इस कथा में व्यक्त होती दिख सकती है। उसने अपनी भावनात्मक एवं शारीरिक जरूरतों को दो वर्षों तक दबाया। किन्तु एक समय के

---

[102] फिल्मिका (प्रस्तुति), रमणिका गुप्ता (सम्पादक), पूर्वोत्तर : आदिवासी सृजन, मिथक एवं लोककथाएँ,पृष्ठ 166

बाद वह अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए बाहर निकलती जरूर है। लेकिन राजा ने इस संबंध को स्वीकार नहीं किया। उसने रानी के प्रेमी को मौत की सजा सुनाई। इससे स्पष्ट होता है कि खासी समाज में भी विवाह के बंधन में बंधी स्त्री की यौनिकता पर पुरुष का नियंत्रण कमोबेश है ही। भले ही इसके लिए स्त्री को सजा न दी गयी हो लेकिन उनके इस कदम का राजा ने सम्मान नहीं किया है।

आदी समाज की लोककथा 'एक दास लड़के ने कैसे धनवान व्यक्ति की बेटी से शादी की'[103] एक ऐसी कथा है जिसमें हम बेहतर आर्थिक और सामाजिक स्थिति के ऊपर जेंडर की सत्ता को देख सकते हैं। इस कथा में स्त्री की असहाय स्थिति और 'विक्टिम ब्लेमिंग' का उदाहरण मिलता है। इसमें एक चालक और दुष्ट दास लड़का एक धनी व्यक्ति की बेटी को जंगल में भटका देता है और रात घिर आने पर वह स्वयं को असहाय पाती है। इसका फायदा उठा कर वह उसके साथ संबंध बना लेता है। अगले दिन जब वह गाँव लौटती है तो उसका प्रेमी तथा अन्य लोग लड़की को ही दोष देते हैं और वह स्वयं की 'इज्जत' को जाता हुआ महसूस करती है,

"अगर वह 'तुतुरुंग' पक्षी उस रात नहीं चीखी होती,

मैं स्वयं को उस दास लड़के को समर्पित न करती,

अगर वह दुष्ट पक्षी उस रात मुझे न डराती

मैं रहती अपने प्रियतम के साथ खुशी-खुशी।"

---

[103] Obang Tayeng, 'How a slave boy married a rich man's daughter', Folk tales of the Adis, Mittal publication, New Delhi, 2003, page 103-104

कह सकते हैं कि इस आदी लोककथाओं में स्त्री की अस्मिता का अतिक्रमण हो रहा है। उसका कोई दोष न होने हुए भी उसे त्याग दिया जाता है।

लेकिन पूर्वोत्तर के कुछ अन्य समाज हिंसा की शिकार स्त्री को कैसे देखते हैं इसके लिए इस तंखुल नागा लोककथा में देखते हैं। यह लोककथा तंखुल समाज में स्त्री की 'इज्जत' चले जाने की अवधारणा को नकारती दिख सकती है। 'जिंगशोंग कामरंग की कथा'[104] से स्पष्ट होता है कि 'महाराजाओं' द्वारा तराई के मणिपुरियों के यहाँ से औरतों का अपहरण करवाया जाता था।

जब एक महाराजा को खबर मिली कि कामरंग की पत्नी बहुत सुन्दर है तो उसने दोनों को साथ आने का आदेश दिया। खाना खिलाने के बाद महाराजा के सैनिकों ने कामरंग को बाहर धकेल दिया और उसकी पत्नी के साथ महाराजा और मंत्रियों ने 'उसके साथ पाप कर्म किया' (There, the king and his councillor committed sin to her)। कुछ इंतजार के बाद कामरंग चिल्लाता है "क्या तुम मेरी पत्नी को नहीं भेजोगे?" कुछ समय बाद किसी के कंधे के सहारे उसकी पत्नी बाहर आती है। महाराजा का चिकित्सक उसका गर्भपात करवाता है और उसे स्वस्थ करने के बाद दोनों पति-पत्नी खुशी-खुशी वापस अपने गाँव लौट जाते हैं (After curing her, the husband and wife reached their village happily)। आगे कथा में पूरे जीवन और मृत्यु के बाद भी साहसी और बुद्धिमान कामरंग उस महाराजा के लिए सिरदर्द बन जाता है।

---

[104] S| Arokianathan, 'The story of Zingshong Kamrang', Central Institute of Indian Languages, Mysore, 1982, Page 107-123

किन्तु इस कथा में जो सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है वह है स्त्री पर होने वाली हिंसा के लिए स्त्री को ही जिम्मेदार न माना जाना। आम तौर पर स्त्री के साथ होने वाली शारीरिक हिंसा के बाद समाज स्त्री को उसी नजर से नहीं देखता है, लेकिन इस कथा में स्त्री की अस्मिता को उसकी 'शुद्धी' से जोड़ कर नहीं देखा जा रहा है। यहाँ हिंसा हिंसा है, उसके बदले का अपना तरीका है। यहाँ शोषित का त्याग नहीं किया जा रहा है।

2.2 विभिन्न जेंडर के बीच शक्ति का बंटवारा

समाज की कार्यप्रणाली को समझने के लिए समाज विज्ञान की कई शाखाओं में लगातार अध्ययन चल रहा है। दुनिया की लगभग आधी आबादी अर्थात स्त्री के प्रति समाज की वैचारिकता और कायदे की पड़ताल नारीवादी वैचारिकता के आगमन के बाद तेज़ी से विकसित हुई। पितृसत्ता, जेंडर, स्त्री के आर्थिक अधिकार, यौनिकता आदि ऐसे पहलू हैं जिसे नारीवाद और स्त्री अध्ययन ने 'आईडेंटीफाई' किया है। यह बड़ी उपलब्धियां थी। स्त्रियों के प्रति समाज के व्यवहार के मूल कारणों को जान लेने के बाद स्त्री की स्थिति के प्रति व्याप्त जैविक निर्धारणवाद को बड़ा झटका लग रहा है। इन वैचारिक उपलब्धियों के बाद स्त्री संबंधी समस्याओं को नजरअंदाज करना अब उतना आसान नहीं रह गया है।

निवेदिता मेनन लिखती हैं, "औरतों की मौजूदा अधीनता, अपरिवर्तनीय जैविक असमानताओं से नहीं पैदा होती है बल्कि यह ऐसे सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों, विचारधाराओं और संस्थाओं की देन है जो महिलाओं की वैचारिक तथा भौतिक अधीनता को सुनश्चित करती है।"[105] निवेदिता यह भी यह स्पष्ट करने का प्रयास किया कि प्रकृति ने 'Sex' (लिंग) बनाया था। संस्कृति ने उसके आधार पर 'Gender' बनाया। जेंडर लिंगों के ऊपर एक विशेष चरित्र, जीवन शैली, व्यवहार एवं अपेक्षाएं थोपता है। जो इन तय मानकों के आधार पर व्यवहार नहीं करता उसे शारीरिक, आर्थिक अथवा मानसिक रूप से दण्डित किया जाता है। अंततः शक्तिशाली जेंडर अपनी सत्ता स्थापित

[105] निवेदिता मेनन, नारीवादी राजनीति : संघर्ष के मुद्दे (संपादक) साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001, पृष्ठ 8

करता है। समाज के व्यवहार और व्यवस्था के इस बिंदु को जान लेने के बाद 'मर्दाना', 'औरतों वाला काम' जैसे पदों को निरस्त करने की शक्ति मिलती है।

पहाड़ और मैदान के अस्तित्व में आने की एक कथा अरुणाचल के आदी समुदाय में प्रचलित है। यहाँ इसका उल्लेख करना सही लग रहा है। 'जेंडर' अध्ययन की दृष्टि से भी यह अप्रकाशित कथा काफी रोचक है, इस कथा को शोधार्थी ने गीतमाला बोको से शिलांग में सुना था,

"बहुत पहले की बात है, एक परिवार था। उसमें तीन जन रहते थे, पिता, माँ और बेटी। पिता का नाम था गुमिन बाबु, माँ का सोयीन नाने और उनकी बेटी थी गागी। गागी उस समय की सबसे सुन्दर लड़की थी। पूरे जग में उसे ही सबसे सुन्दर मानते थे।

एक दिन गुमिन का मिथुन 'इसो गाम्ने' गुम हो जाता है। गुमिन उसे ढूंढ़नें जंगल जाते हैं। वह उसे हर जगह ढूंढ़ते हैं परन्तु शाम होने तक उसे वह नहीं मिल पाता है। उसी समय उन्होंने रास्ते पर एक 'तातिक' (मेंढ़क) को देखा। गुमिन ने मन ही मन सोचा कि अगर ये तातिक इंसान होता तो मैं अपने इसो के विषय में उससे पूछ सकता था। गुमिन मन में सोचते हुए अपने आपसे बात करने लगता है। उसी समय वह तातिक बोल पड़ता है, 'बाबुए नोक इसो येको एम न्गो केंदुंग' अर्थात बाबू मुझे पता है कि आपका इसो कहाँ है। तातिक के इस बात को सुनकर गुमिन बाबु को लगा कि यह मेंढ़क मनुष्य की बात अच्छी तरह समझ सकता है। गुमिन तातिक से पूछता हैं, 'क्या तुम्हे सच में पता है मेरा इसो कहाँ है?' गुमिन उससे आग्रह करता है कि अगर तुम सच कह रहे हो तो कृपया मुझे वहां पहुंचा दो। तातिक मान जाता है। वह उछल-उछल कर गुमिन को इसो तक पहुंचा देता है।

गुमिन तातिक की इस सहृदयता प्रसन्न होकर उसे अपने घर आमंत्रित करता है। परन्तु तातिक उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता है। गुमिन बाबु को बहुत इच्छा थी कि वह तातिक को अपने घर लेकर जाए इस कारण उसने तातिक को कहा, “अगर तुम मेरे मेरे साथ चलोगे तो तुम जो चाहते हो और जो मांगोगे वह मैं तुम्हे दूंगा।” तातिक गुमिन के इस बात को सुनकर चलने के लिए तैयार हो जाता है।

गुमिन बाबु और तातिक इसो को लेकर घर की ओर चलते हैं। घर पहुँचते ही गुमिन अपने परिवार को जंगल की सारी बातें बताता है। घर आए मेहमान के सत्कार के लिए गागी तातिक के लिए अपोंग (सुरा) लेकर आती है। तातिक यमेंग गागी की खूबसूरती देखकर आकर्षित हो जाता है। तातिक गुमिन को उसके वचन की याद दिलाते हुए उसकी बेटी मांग लेता है। गुमिन ने कहा था कि अगर तातिक उसके साथ चलेगा तो उसकी जो इच्छा होगी वह पूरी करेगा। उसे सुनकर गुमिन बाबु असमंजस में पड़ जाता है। उसे समझ में नहीं आता कि वह क्या करे क्या न करे? गुमिन सोचता है कि अगर वह उसे हाँ कह देगा तो समाज के लोग क्या-क्या सोचेंगे! गुमिन तातिक को कहता है, “तुम मेरी बेटी के अलावा और कुछ भी मांग लो, मैं जरूर पूरी करूँगा।” लेकिन तातिक भी अपनी बात पर अड़ जाता है कि उसे और कुछ नहीं केवल गागी ही चाहिए।

तातिक गुमिन को चेतावनी देते हुए कहता है, “अगर तुमने मेरी बात नहीं मानी तो मैं तुम्हारे सारे मिथुन, सूअर और इस दुनिया को नष्ट कर दूंगा।” तातिक के इस बात को सुन कर गुमिन बाबु सोच में पड़ जाता है। अंत में वह फैसला लेता है कि अगर मेरे हाँ

कहने से पुरी दुनिया बच सकती है तो मैं अपनी बेटी को तातिक को दे दूंगा। गुमिन के हाँ कहने से तातिक खुश होकर वापस अपनी जगह चला गया।

तातिक यमेंग के चले जाने के बाद गुमिन बाबू बहुत दुखी होकर रो रहा था कि कैसे वह अपनी बेटी को एक मेंढक को दे देगा! उसे रोता देखकर सोयीन नाने और गागी रोने का कारण पूछते हैं। गुमिन बाबु ने वो सारी बातें उन्हें बताई जो तातिक और उसके बीच हुई और यह भी कि गागी का हाथ उसने तातिक को दे दिया। सारी बात सुनकर गागी ने सोचा और निर्णय लिया कि, "मेरे पिता के इस फैसले को मैं स्वीकार करूंगी और मेरे पिता की खुशी ही मेरी ख़ुशी है।" फिर तातिक यामिंग गुमिन बाबू का दामाद बन गया।

गागी की तातिक से स्वीकार के बाद तातिक रात को दामाद के रूप में अपने ससुराल में आने लगा। गागी ने देखा कि तातिक जब रात को आता है वह इंसान के रूप में रहता है और जब सुबह जाने लगता है तब मेंढक बन जाता है। गागी ने पाया कि जब वह उसके साथ सोता है तो इंसान बना रहता है, इस वजह से उसने निश्चय किया कि वह इस रहस्य का पता लगाएगी।

गागी ने तातिक से कहा, "तुम जहाँ जाओगे मैं भी जाउंगी, मुझे भी तुम्हारे काम करने की जगह देखनी है।" तातिक ने गागी को साथ चलने के लिए कहा और वह गागी को अपने साथ अपने काम करने की जगह ले गया। रास्ते में चलते-चलते तातिक ने गागी से कहा कि तुम मेरे काम को जानने के बाद मेरी असलियत किसी को नहीं बताना। गागी ने भी कसम खाई कि वह किसी को नहीं बताएगी।

एक दिन वे दोनों मैदानी इलाके में घुमने गए। तातिक ने उसे बताया कि जितने भी मैदानी इलाके हैं वे उसके दादा, पिता और उसके द्वारा बनाया गया है। अपने परिवार की परंपरा को तातिक भी बढ़ा रहा है। इसके बाद दोनों शाम होने से पहले घर वापस चले जाते हैं।

गागी सोचती है कि उसका पति हमेशा के लिए इंसान बन जाए। उसने ठान लिया कि वह यह संभव करेगी। जब उसका पति सो रहा था तो उसने अपने पति की केचुंली को एजी में जला देती है। तातिक सुबह होने पर अपनी केंचुली को ढूंढ़ता है। वह गागी से पूछता है, "कहाँ है मेरी मेंढक की केंचुली?" बाद में में गागी ने बतलाया कि उसने उसे जला दिया।

तातिक गागी को उस केंचुली के महत्व को बताता है। उसने कहा कि उसी केंचुली की शक्ति से वे लोग पहाड़ को मैदान बना पाते थे। अब वह केंचुली नहीं है, अब वे यह कार्य नहीं कर पाएँगे। उस दिन के बाद वह कभी तातिक (मेंढक) नहीं बन पाया। उसकी पत्नी खुश थी किन्तु उसके कारण तातिक का कार्य अधूरा रह गया। उसके बाद किसी ने यह कार्य नहीं किया इसलिए आज भी धरती पर कुछ 'कोजोंग कोरोंग' (उबड़-खाबड़) रह गए हैं। यही कारण है कि आज भी पहाड़ी इलाकों में इतने मेंढक नहीं होते जितने मैदानी इलाकों में होते हैं। अगर गागी तातिक की केंचुली को नहीं जलाती तो आज दुनिया में पहाड़ नहीं होते हर जगह मैदान ही होता।

तातिक आज भी मनुष्य की मदद करता है। खेत की फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीट-पतंगों को खा जाता है। इसकी वजह से खेत के फसल की रक्षा होती है।"

इस कथा में हम देख सकते हैं कि आदी समाज में पुरुषों के पास अधिक 'ऑथोरिटी' है। स्त्री को उसके काम में रुकावट डालने वाला बताया गया है। दोनों की शादी भी बिना स्त्री के सहमती से हुआ है। या यूँ कहें कि स्त्री को मज़बूरी में करना पड़ा है। ऐसे में इस कथा में स्त्री के पास कुछ ख़ास शक्ति होती नहीं है। फिर भी अंततः उस स्त्री ने अपनी इच्छा के अनुरूप अपने पति को पूरी तरह से पा लिया।

अगर हम पूर्वोत्तर के कुकी समाज की बात करें तो इस समाज की स्त्रियों से एक एक ख़ास व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। जिसके अनुरूप उन्हें चलना पड़ता है। मिज़ो समाज स्त्री के ऊपर पितृसत्तात्मक दवाब बहुत होता है।[106]

लेकिन इन सारी बाधाओं के बावजूद स्त्री का संघर्ष सतत जारी है। भले ही स्त्री द्वारा थोपे गए मूल्यों को स्वीकार कर लिए जाने के बहुत उदाहरण मिलते हों, वे समाज में अपने स्थान को प्राप्त करने के लिए सतत संघर्षरत हैं। स्त्री अपना स्थान प्राप्त कर भी रही हैं। लोकसाहित्य में भी स्त्री की स्थिति के ये दोनों पक्ष स्पष्ट दिखते हैं। एक स्तर पर जहाँ स्त्री पर नियंत्रण के मजबूत मूल्य मिलते हैं और स्त्री इनके प्रति समर्पण करती हुई नजर

---

[106] Hoineilhing Sithou, 'Portrayal of Women in Myth and Folktales of the Kukis', Kuki Women Edited by Hoineilhing Sithou, Synergy Books India, 2014 "The folklore and myth contributes and determines not only the worldview and ideology of the Kukis, but they also represent the stereotypes of both men and women। They reproduced and emphasised gender related issues including gender role and how women are represented in a particular society। ।।। Men expect lady like character in their women। The conventional personality type of Kuki women ought to be soft-spoken, quiet, graceful and refined, polite, humble, obedient as against to qualities like assertiveness, ambitious and economically independent according to popular vote।"

आती है तो दूसरी ओर स्त्री मुखर स्वर अथवा आश्चर्यजनक रूप से उन स्त्री विरोधी मूल्यों के सहयोगी मूल्यों की सहायता से ही अपने अधिकार को सुनिश्चित करने का भरपूर प्रयास करती है।

कहा जा सकता है कि पूर्वोत्तर की आदिवासी संस्कृति में निश्चित रूप से शेष भारत की अपेक्षा स्त्री बेहतर स्थान रखती है किन्तु हमें स्त्री की स्थिति के सामान्यीकरण से बचना चाहिए। ऐसी प्रवृत्ति स्त्री की वास्तविक स्थिति के अध्ययन के प्रति लोगों को लम्बे समय के लिए उदासीन बना देती है। अकादमिक क्षेत्र में व्याप्त खुशफहमी के भाव के कारण पूर्वोत्तर के समाजों की स्त्रियों की समस्याएं अनसुनी रह जाती है। पूर्वोत्तर की लोककथाओं में स्त्री की स्थिति एवं अस्मिता के कुछ पक्ष उभर कर आते हैं जो यह बताने के लिए सहायक हैं कि यहाँ के समाजों में भी स्त्री के फैसले, राजनीतिक अधिकार आदि पर पुरुष वर्चस्व स्थापित है। अगर लोककथाओं की बात करें तो कुछ कथाओं में स्त्री पर होने वाली हिंसा का जिम्मेदार स्त्री को ही मानने की प्रवृत्ति मिलती हैं किन्तु कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं जो स्त्री के साथ खड़ीं मिलती है। पूर्वोत्तर की आदिवासी लोककथाओं में स्त्री अस्मिता के विविध एवं कई बार विपरीत रूप सामने आते हैं, जो हमें यह बतलाने के लिए पर्याप्त है कि अन्य समाजों की तरह इन समाजों में भी स्त्री अस्मिता सम्बन्धी कुछ मूलभूत प्रश्न हैं जिन पर काम होना बांकी है। किन्तु ऐसा भी नहीं है कि इन कथाओं में स्त्रियाँ कमज़ोर हैं। इन कथाओं का अध्ययन एक समुचित दृष्टि की मांग करता है, जहाँ हम ट्राइबल समुदाय की कथाओं को उनकी दृष्टि से देखें।

अध्याय 3.

पूर्वोत्तर की लोककथाओं में जेंडर दायित्व (Gender Role)

अध्याय 3. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में जेंडर दायित्व (Gender Role)

समाज की संरचना को गहराई से समझना और स्त्री के अधिकारों के अतिक्रमण की प्रक्रिया के मूल की पहचान करना स्त्री विमर्श के लिए बहुत महत्वपूर्ण था। पितृसत्ता की पहचान करने से यह पता चल गया कि इतिहास के क्रम में एक समय आया जब पुरुषों ने स्त्रियों के ऊपर नियंत्रण हासिल कर लिया और समाज के केंद्र में अपनी सत्ता और स्वार्थ को स्थापित कर दिया। उन्होंने ऐसे नियम थोपे जो यह सुनिश्चित कर कि हजारों साल तक पुरुषों की सत्ता बरकरार रहे। पुरुषों ने जिन कार्यों को अपने लिए चुना उन्हें समाज में अधिक महत्व दिलवाया। स्त्रियों एवं अन्य जेंडर के लोगों के लिए सामाजिक महत्व की बहुत कम संभावनाएं छोड़ी। स्त्री विमर्श ने पितृसत्ता के साथ-साथ 'जेंडर' की अवधारणा को भी उजागर कर दिया। इसमें यह साबित किया गया कि प्रकृति ने 'सेक्स' (लिंग) बनाया और संस्कृति ने 'जेंडर'। अर्थात प्रकृति ने विभिन्न लिंग के जीव का निर्माण किया। लिंग सम्बन्धी विशेषता उनकी अपनी थी। अगर हम दो लिंग, पुरुष और स्त्री की बात करें तो प्रकृति ने इनमें से किसी को कम या अधिक महत्व नहीं दिया है। लेकिन जब संस्कृति इसी लिंग के आधार पर 'जेंडर' का निर्धारण करती है, वहां से पुरुष वर्चस्व मजबूत होता जाता है। समाज लिंग के आधार पर कार्यों का बंटवारा करता है। 'जेंडर असामनता के सिद्धांत जो आर्थिक संसाधनों पर केन्द्रित हैं, उनके अनुसार अनऔद्योगिक समाजों में, शिकार एवं संग्रह पर आधारित समाजों में जहाँ 'नगण्य अतिरिक्त' बचता था और स्त्री एवं पुरुष दोनों जीवन निर्वाह में भागीदारी लेते थे, ऐसे समाजों में महिलाओं की स्थिति सबसे उच्च होती थी। महिलाओं का स्थान कृषि केन्द्रित

समाजों में सबसे नीचे है जहाँ तकनीक महिलाओं के जीवन निर्वाह में प्रत्यक्ष भागीदारी को सीमित करती है।'[107]

'जेंडर' सभ्यताओं की देन है। समाज ने जैविक लिंग के लिए 'भूमिकाएँ' तय कर दी। इन भूमिकाओं के पालन का दवाब सभी लिंगों पर रहता है। पितृसत्तात्मक समाज में यह जेंडर विभेद बहुत मजबूत हो जाता है। पुरुष को सबसे महत्वपूर्ण मानना और सत्ता का नियंत्रण उसके पास होना पितृसत्ता का मूल है। ऐसी व्यवस्था में पुरुष अन्य जेंडर पर अपना आधिपत्य बनाने का प्रयास करते रहता है।

जेंडर और सत्ता (Power) का गहरा रिश्ता है। कई बार जेंडर अपने आप में सत्ता का प्रतीक बन जाता है। हम जानते हैं कि लिंग अथवा 'सेक्स' प्रकृति प्रदत्त है, एवं जेंडर सभ्यता एवं संस्कृतियों द्वारा विकसित है। सभ्यताओं द्वारा विकसित जेंडर अपने साथ कुछ नियम लेकर आता है। यूँ कहें कि समाज द्वारा विकसित नियमों से जेंडर का निर्माण होता है। प्रकृति ने अगर स्त्री एवं पुरुष बनाया तो सभ्यता ने औरत और मर्द जैसे जेंडर का गठन किया। जेंडर की अवधारणा तय 'रोल' पर टिकी होती है। हर सेक्स के लिए निश्चित दायित्व और व्यवहार। जैसे औरतों के लिए घर का काम-काज, बच्चों का पालन-पोषण

---

[107] Huber and Spitze 1983 quoted by Daphne Spain, Gendered Spaces and Women's Status, Sociological Theory, Vol। 11, No। 2 (Jul।, 1993), pp। 138, American Sociological Association। "Theories of gender stratification that focus on economic organization propose, for nonindustrial societies, women's status is highest in hunting and gathering societies, where little surplus exists and where both women and men contribute to subsistence; women's status is lowest in those agricultural societies where technology reduces women's direct contribution to subsistence production"

जैसी जिम्मेदारी तय कर दी जाती है वहीं मर्दों के लिए भोजन जुटा के लाना, पैसे कमाना, राजनीतिक, सामाजिक फैसले लेना आदि। किसी समाज में जिम्मेदारियों के इस बंटवारे के बाद अक्सर कुछ काम को कम महत्वपूर्ण और कुछ को अधिक महत्वपूर्ण माना जाने लगता है।

गर्डा लर्नर के अनुसार, 'पितृसत्ता, परिवार में महिलाओं और बच्चों पर पुरुष के वर्चस्व की अभिव्यक्ति और संस्थागतकरण तथा सामान्य रूप से महिलाओं पर पुरुषों के सामाजिक वर्चस्व का विस्तार है। इसका अभिप्राय है कि पुरुषों का समाज के सभी महत्वपूर्ण सत्ता प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रहता है और महिलाएं ऐसी सत्ता तक पहुँच से वंचित रहती हैं।" वह यह भी कहती हैं कि इसका यह अर्थ नहीं है कि "महिलायें या तो पूरी तरह शक्तिहीन हैं या पूरी तरह अधिकारों, प्रभाव और संसाधनों से वंचित हैं।" इसका अर्थ यह भी नहीं है कि प्रत्येक पुरुष सदा वर्चस्व की और प्रत्येक स्त्री सदा अधीनता की स्थिति में ही रही है बल्कि महत्वपूर्ण बात यह है कि इस व्यवस्था जिसे हमने पितृसत्ता का नाम दिया है, के तहत यह विचारधारा प्रभावी रहती है कि पुरुष स्त्रियों से अधिक श्रेष्ठ हैं, तथा महिलाओं पर पुरुष का नियंत्रण है और होना चाहिए, और महिलाओं को पुरुषों की संपत्ति के रूप में देखा जाता है।'[108]

'जेंडर रोल' को समझने के लिए हमें मार्गरेट मीड को समझना होगा। "डॉ मीड ने पापुआ न्यू गिनी के कुछ संस्कृतियों के अध्ययन के बाद पाया कि हर संस्कृति में पुरुष और स्त्री के व्यवहार के तरीकों में अंतर है। उस समय के अमेरिकी समाज में अपेक्षित

---

[108] Gerda Lerner, The creation of patriarchy, Oxford University Press, NewYork, 1986

जेंडर रोल से तो बिलकुल अलग। मीड ने पाया कि अरापेश (Arapesh) समुदाय में पुरुष और स्त्री दोनों का स्वाभाव सौम्य, उत्तरदायी और सहयोगी थी। मुंदुगुमोर (अब बिवात) (Mundugumor, now Biwat) समाज में पुरुष और स्त्री दोनों उग्र और आक्रामक स्वभाव के थे एवं सत्ता और स्थान की खोज में थे। चाम्बुली (अब चाम्ब्री) (Tchambuli, now Chambri) समुदाय में पुरुष और स्त्री का स्वभाव एकदूसरे से अलग था। स्त्री प्रबल, निरपेक्ष और प्रबंधकीय थी तथा पुरुष कम उत्तरदायी एवं अधिक भावनात्मक रूप से आश्रित थे।"[109]

कई प्रारंभिक समाज में परिवार की सुरक्षा, शिकार आदि का 'दायित्व' पुरुषों के पास होता था। वहीं बच्चों का पालन-पोषण, भोजन बनाने, घर की साफ़-सफाई का 'दायित्व' स्त्रियों को दिया गया। काम के इस बंटवारे से धीरे-धीरे समाज में ऐसे स्थिति बन गई कि लोग किसी काम को सहज किसी लिंग के साथ जोड़ने लगे। समाज ने लिंग को केन्द्रित करके यह धारणा बना ली कि, "अमुक काम इसी की जिम्मेदारी है।" ऐसी धारणा का असर यह हुआ कि आगर किसी लिंग के व्यक्ति ने अपने लिंग के लिए निर्धारित कार्य को ठीक ढंग से नहीं किया या उससे इतर अन्य लिंग के लिए निर्धारित कार्य को करने की

---

[109] Margaret Mead: Human Nature and the Power of Culture, Papua New Guinea: Sex and Temperament, "Mead found a different pattern of male and female behavior in each of the cultures she studied, all different from gender role expectations in the United States at that time। She found among the *Arapesh* a temperament for both males and females that was gentle, responsive, and cooperative। Among the *Mundugumor* (now Biwat), both males and females were violent and aggressive, seeking power and position। For the *Tchambuli*(now Chambri), male and female temperaments were distinct from each other, the woman being dominant, impersonal, and managerial and the male less responsible and more emotionally dependent।

चेष्टा की तो समाज ने इसपर नियंत्रण लगाना शुरू कर दिया। यह नियंत्रण सामाजिक निंदा एवं दंड आदि के द्वारा समाज के परंपरा के रूप में स्थापित कर दी गई। यही वजह है कि आज आधुनिक माने जाने वाले समाजों में भी 'जेंडर दायित्व' को टक्कर देने वालों को समाज के प्रतिरोध का सामना करना पड़ता है। काम के बंटवारे को लेकर समाज के इस 'रिजिडनेस' के कारण जेंडर निर्धारण की प्रक्रिया भी शुरू हो जाती है।

'जेंडर दायित्व का प्रशिक्षण और प्रवाह परिवार के अन्दर से शुरू होता है। जैसे माँ से बेटी में। साथ ही किसी विशेष आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ में उसके समाजीकरण का भी असर पड़ता है।'[110]

शोधार्थी को दिए साक्षात्कार में प्रो तेम्सुला आओ[111] ने पितृसत्तात्मक विचार के दवाब को याद करते हुए बताया कि एक समय ऐसा था जब मैं अपने बेटे को घर का कोई काम करते हुए देखती थी तो अपनी बेटियों पर चिल्लाती थी कि तुम अपने भाई को कैसे करने दे सकती हो ये सारे काम। यह पूछने पर कि यह कब बदला, उन्होंने बताया कि एक 'सिंगल मदर' होने के नाते यह तय था कि बच्चों को अपनी जिम्मेदारी उठानी होगी, विश्वविद्यालय में काम करते हुए उनके पास इतना समय नहीं था कि वे घर पर भी सब कुछ कर सकें और कह सकते हैं कि परिस्थितियों ने जेंडर रोल को तोड़ा।

---

[110] Chi-Kwan Ho, Gender-Role Perceptions: An Intergenerational Study on Asian-American Women, NWSA Journal, Vol। 2, No 4, The Johns Hopkins University Press, 1990, page 680 "Gender role orientation is transmitted within the family, for example, between mothers and daughters, and other agents of socialization operating within particular economic, political, socio-cultural contexts"

[111] शोधार्थी के साथ प्रो। तेम्सुला आओ के साक्षात्कार के आधार पर, नवम्बर 2019, दीमापुर नागालैंड।

पूर्वोत्तर की लोकथाओं में जेंडर दायित्व की झलकी कई रूपों में देखी जा सकती है। कहीं यह सीधे-सीधे निर्देश के साथ तय होता हुआ दीखता है तो कहीं पात्रों के दैनिक क्रियाकलापों में हम जेंडर दायित्व के तत्त्व ढूंढ सकते हैं।

छावनलैहविही (Chhawnlaihwihi)[112] मिज़ो लोककथा में जेंडर दायित्व के कुछ महत्वपूर्ण तत्व मिलते हैं। इस कथा में किसी बड़े शहर में एक बड़ा घर था जो सिर्फ लोहे से बना था। इस घर की मालिक थी छावनलैहविही। उसके छः बड़े भाई थे और एक छोटा भाई था। सारे भाई उसे बहुत प्यार करते थे। एक दिन उसने अपने भाइयों से कहा कि उसे आकाश-फूल चाहिए। वे सभी जंगल गए और आसमान तक जाने के लिए सीढ़ी बनाने के लिए पेड़ काटने गए। सबसे छोटा भाई खाना-रसद लेने घर आया। छावनलैहविही ने सातों भाइयों के लिए तीन दिन का खाना दे दिया। अगले दिन बक्वाव्मटेपू (Bakvawmtepu) नाम का आदमी छोटे भाई का वेश बना कर आया और दरवाजे पर दस्तक देने लगा। जैसे ही उसने दरवाजा खोला बक्वाव्मटेपू उसे जबरदस्ती अपने साथ ले गया। तीन दिन बीतने के बाद छोटा भाई फिर से जंगल से रसद लेने घर आया तो घर खाली देख कर वह सतर्क हो गया और अपने भाइयों को यह बात बताने के लिए वापस जंगल की तरफ भागा। वे सभी अपनी बहन को ढूंढनें निकल पड़े। जब वे एक देश पहुँचे तो लोगों से पूछा कि उनकी खोई बहन को वे कहाँ पा सकते हैं? लोगों ने कहा कि आप सही दिशा में आये हैं और आगे बढ़ने को कहा। वे लोग एक जगह पहुँचे जहाँ दो पहाड़ आपस में मुर्गों की तरह लड़ रहे थे। जब वे उसके बीच से निकलने की कोशिश

---

[112] B Lalthangliana, Culture and folklore of Mizoram, Publication division, New Delhi, 2005, page 324

करने लगे तो दोनों के बीच दब कर मर गए। सबसे छोटा भाई पंडुक बन गया और अपनी बहन को ढूँढने की यात्रा में आगे बढ़ता रहा। वह अपनी बहन का नाम पुकारता तब तक उड़ता रहा जब तक वह किसी गांव के एक घर के पास नहीं पहुँच गया जहाँ बक्वाव्मटेपू रहता था। छावनलैहविही तुरंत अपने छोटे भाई की आवाज पहचान गई और उसने दरवाजा खोल दिया ताकि वह अंदर आ सके। बक्वाव्मटेपू घर पर नहीं था। पंडुक एक बच्चे के रूप में बदल गया। उसने बच्चे को घर में छुपा दिया। जब बक्वाव्मटेपू वापस आया तो छावनलैहविही ने उससे कहा क्योंकि हमारे पास अपना कोई बच्चा नहीं है तो मैं एक बच्चे को गोद लेना चाहती हूं। वह तैयार हो गया और छावनलैहविही ने उसे बच्चा ला कर दिखाया। उसे बच्चा बहुत पसंद आया और वह उसे रोज अंडा खिलाता था। बच्चा बड़ा होकर एक ताकतवर पुरुष बना। अपनी ताकत को आजमाने के लिए उसने अपने चेहरे को काला किया और खेतों की तरफ बक्वाव्मटेपू से कुश्ती करने के लिए निकल गया जहां वह काम कर रहा था। वह जीत गया। बक्वाव्मटेपू को इस बात की जानकारी नहीं थी किया पुरुष उसका ही गोद लिया हुआ बेटा है। उस दिन के बाद से युवा पुरुष और छावनलैहविही मिल कर बक्वाव्मटेपू को मारने की योजना बनाने लगे।

एक दिन औरत ने अपने आदमी से पूछा,

“तुम्हें बनाने वाला कौन है?

“लाल पंख वाली बड़ी पंडुक, अपने बारे में भी बताओ।”

“नदी की बड़ी मछली।”

“मुझे जरुर जा कर मछली के साथ खेलना चाहिए।”

वह नदी गया और अपने खाली समय में मछली के साथ खेलने लगा। इसी दौरान युवा पुरुष भी लाल पंख वाली बड़ी पंडुक के पास गया। वह पंडुक के साथ बहुत शालीनता से पेश आया और पंडुक ने उसे खेलने के लिए बहुत कुछ दिया। उसने पंडुक द्वारा दिए गए चीजों का बहुत अच्छे से ख्याल रखा और उन्हें उसी स्थिति में वापस लौटा दिया। बहुत जल्द पंडुक उस पर भरोसा करने लगी और उसे खेलने के लिए सबसे दुर्लभ चीजें देने लगी। अपना अंडा भी। अगले दिन उसे खेलने के लिए एक छोटा पंडुक दिया गया, लेकिन उसे चेतावनी दी गई कि पंडुक को कोई क्षति न पहुंचे क्योंकि वह बक्वाव्मटेपू का प्रतिरूप है।

वह पंडुक लेकर छावनलैहविही के पास आ गया और पंडुक देकर उसने निर्देश दिया कि जब वह बक्वाव्मटेपू से लड़ने जाए तो वह सबसे पहले इस पंडुक का पंख तोड़ दे फिर उसके पैर और अंत में उसका गर्दन तोड़ दे।

जब वे दोनों लड़ रहे थे तो युवा पुरुष के दिए निर्देशों के अनुसार छावनलैहविही ने पंडुक को मार दिया और बक्वाव्मटेपू भी मारा गया। छावनलैहविही युवा पुरुष के साथ अपने लोहे के घर वापस आ गई। रास्ते में उन्हें अपने भाइयों का मृत शरीर मिला। उन्होंने एक ऐसे पेड़ के पत्ते लिए जिसे पहले कभी किसी ने नहीं छुआ था, छावनलैहविही ने उन पत्तों से अपने भाइयों के मृत शरीर को छुआ और सभी जिन्दा हो गए। जब वे अपने लोहे के घर आए तो उन्होंने देखा कि उनका घर बहुत पुराना हो गया है और उसपर जंग लग गया है। वे घर की छत पर गए, घर टूट कर गिर गया, वे भी साथ गिरे और आठों मारे गए।”

इस लोककथा को रामकथा के सीता-हरण के प्रसंग के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। दोनों कथाओं में स्त्री किसी दुर्लभ चीज की मांग करती है और पुरुष उसे लाने जाते हैं और इस दौरान कोई स्त्री का अपहरण करके ले जाता है। लेकिन दोनों कथाओं में एक अंतर यह है कि जहाँ सीता को लक्ष्मण ने अपने तीर से एक रेखा खींच कर उसके अन्दर रहने का निर्देश दिया वैसा कोई निर्देश छावनलैहविही के भाई उसे नहीं देते हैं। आज जेंडर-विमर्श से जुड़े विचारक 'लक्ष्मण-रेखा' को पितृसत्ता से जोड़ते हैं।[113] लक्ष्मण-रेखा स्त्री के 'स्पेस' को निर्देशित, नियंत्रित और निर्धारित करती है। सीता-हरण की कथा का कथ्य यह भी है कि अगर आप पुरुषों द्वारा निर्धारित सीमा के बाहर निकलने का प्रयास करेंगे तो बुरे अंजाम के लिए तैयार रहना होगा। वहीं इस मिज़ो लोककथा में इस तरह का कोई निर्देश नहीं दिया गया है। हालाँकि स्त्री का अपहरण यहाँ भी हुआ है लेकिन स्त्रियों के स्पेस को नियंत्रण करने वाले किसी विचार अथवा भय को स्थापित नहीं किया गया है।

इस लोककथा में महिला को मुश्किल समय में सूझबूझ के साथ योजना बनाते हुए अपने आपको मुश्किल से निकालते हुए देखा जा सकता है। किन्तु इसमें उसे पुरुष के मदद की जरुरत पड़ी।

इस कथा में निर्णय लेने में महिलाओं की भूमिका को भी देखा जा सकता है। छावनलैहविही बच्चा गोद लेने के विचार को बक्वाव्मटेपू के सामने रखती है। वह सहमती देता है और छावनलैहविही बच्चा ला कर देती है। इससे स्पष्ट होता है कि भले ही

---

113 Alankrita Anand, Crossing the 'Lakshman Rekha': Feminist retellings of the great Hindu epics, https://wwwlacademialedu/30570225/Title_Crossing_the_Lakshman_Rekha_Feminist_retellings_of_the_great_Hindu_epics

किसी निर्णय में पुरुष की अंतिम सहमती आवश्यक है, स्त्री के विचार का भी महत्व है। घर के अन्दर स्त्रियाँ अपनी बात रखती हैं और निर्णय लेने वाले पुरुषों पर कमोबेश उसका प्रभाव जरुर पड़ता है।

यह कथा हमें यह भी बताता है कि रसोई की जिम्मेदारी स्त्रियों के पास है, और पुरुष बाहर काम कर रहे हैं। छोटा भाई खाना-रसद लेने आता है और बहन उसे सभी के लिए खाना बाँध कर देती है। जेंडर के आधार पर काम के बंटवारे की झलक यहाँ देखा जा सकता है।

3.1 लोककथाओं में अभिव्यक्त ‘जेंडर दायित्व’ के निर्धारण की प्रक्रिया

किसी समाज की परंपरा की स्थापना में उसके लोकवृत्त का बहुत बड़ा योगदान होता है। लोकवृत्त के विभिन्न रूप जैसे, लोकसाहित्य, लोकनृत्य, लोककला, कहावतें आदि समाज में स्मृति के माध्यम से वाचिक रूप से एक पीढ़ी से अगली पीढ़ियों में संचालित होती रहती है। ऐसे में उनके विषय समाज के मानस पर सहज ही बसने लगते हैं और फिर उनके आधार पर समाज की परंपरा स्थापित हो जाती है। लेकिन लोकवृत्त का निर्माण किसी एक व्यक्ति के विचार से नहीं होता अपितु समाज सामूहिक रूप से इसको विकसित करता है। ठीक उसी तरह समाज की वैचारिकता भी सामूहिक रूप से निर्मित होती है और जब समाज लोकसाहित्य विकसित करता है तब उसके विचार भी इसमें सम्मिलित हो जाते हैं।

लोककथाएँ किसी समाज की परंपरा की वाहक होती हैं। लोककथाओं के माध्यम से समाज के लोगों के बीच सामाजिक मूल्यों का प्रचार करना आसान हो जाता है। ऐसे में ऐसी लोककथाएँ जिनमें जेंडर संबंध को लेकर चर्चा की गई हो, को देखना बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। यह कहना सही ही होगा कि इन कथाओं के अध्ययन से हम संबंधित समाज के जेंडर सम्बन्धी वैचारिकता को समझने का प्रयास कर सकते हैं।

पूर्वोत्तर की संस्कृति लोकसंस्कृतियों का समुच्चय है। पूर्वोत्तर भारत की विविधता अद्वितीय है। यहाँ के आदिवासी समूह भाषिक धरातल पर अपनी पृथक पहचान बनाते हैं। विभिन्न आदिवासी समूहों के उपसमूह की भाषाएँ एक दूसरे से बिलकुल भिन्न मिलती हैं। इस भिन्नता के फलस्वरूप यह क्षेत्र सांस्कृतिक और साहित्यिक रूप से विशिष्ट विविधता

की स्थापना करता है। पूर्वोत्तर की अधिकाँश संस्कृतियों के पास अपनी लिपि नहीं थी। असमिया, बोडो और नेपाली जैसी भाषाओँ के अतिरिक्त सामान्यतः सभी भाषाओं की लिपि अंग्रेज शासकों और इसाई मिशनरी द्वारा दी गयी रोमन लिपि है। अर्थात पूर्वोत्तर की भाषाओं में लिखित अभिव्यक्ति को दो सौ-तीन सौ वर्ष से अधिक नहीं हुए हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि यहाँ साहित्य नहीं है। पूर्वोत्तर का लोकसाहित्य बेहद प्रौढ़ और पूर्ण दिखता है। किसी संस्कृति में लिखित साहित्य और इतिहास के अभाव से जो अंतराल उत्पन्न हो सकता है उसकी पूर्ती का एक अपना अलग रास्ता पूर्वोत्तर का लोकसाहित्य निकालता हुआ देखा जा सकता है। इनकी उत्पत्ति कैसे हुए, उनके सामाजिक मूल्य क्या हैं, प्रकृति से उनका क्या संबंध है जैसे तमाम प्रश्नों को सुलझाने के मिथकीय अथवा मनोरंजक समझ विकसित करने का काम इनका लोकसाहित्य करता है।

पूर्वोत्तर में व्यक्तिगत सृजन का इतिहास अभी बहुत पुराना नहीं है। यहाँ लोकसाहित्य ही संवेदना और जिज्ञासा की अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम रहा है। कह सकते हैं कि लोकसाहित्य के अतिरिक्त यहाँ के समाज ने अभी-अभी व्यक्तिगत साहित्य को अपनाया है। ऐसे में इस संक्रमण कालीन अवस्था का अध्ययन साहित्य और समाज के अत्यंत महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालने वाला होगा। यह अध्ययन वैसे समाज का अध्ययन होगा जो हाल तक सिर्फ सामूहिक सृजन में संलग्न था और अभी-अभी व्यक्तिगत सृजन की प्रक्रिया से जुड़ा है। इस प्रकार यह शोध विषय लोकसाहित्य और लिखित साहित्य के बीच की विकास प्रक्रिया को समझने का माध्यम बनेगा।

पूर्वोत्तर भारत भाषिक, सामुदायिक विविधता के मामले में देश के अन्य क्षेत्रों से सबसे अधिक समृद्ध है। सैकड़ों नृजातीय समूह और उनकी अलग-अलग भाषिक और सांस्कृतिक विरासत इस क्षेत्र को सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण बना देता है। यहाँ की सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना, परंपरा, स्त्री-पुरुष संबंध, खान-पान, वस्त्र-आभूषण आदि अध्ययन को एक अलग परिप्रेक्ष्य प्रदान करती है। किन्तु विभिन्न कारणों से यह क्षेत्र मुख्यधारा अध्ययन और विशेष रूप से हिंदी की अकादमिक गतिविधियों द्वारा उपेक्षित रहा है। फलस्वरूप भारत के इस क्षेत्र की संस्कृतियों के बारे में भारत तथा विश्व में उपयुक्त समझ विकसित नहीं हो पायी है। जो क्षेत्र सामाजिक जीवन के कई मामलों में शेष भारत को मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है वह स्वयं सामाजिक ऊपेक्षा का झेलता रहता है।

पूर्वोत्तर की अधिकाँश संस्कृतियों के पास अपनी लिपि न होने के कारण यहाँ की संस्कृतियों के विकास को समझने के लिए लोकसाहित्य सबसे महत्वपूर्ण साधन बन जाता है। उत्तर-पूर्व में लोकसाहित्य की परंपरा बेहद समृद्ध है। यहाँ के समाज और जीवन की स्पष्ट छाप इनके लोकसाहित्य पर देखी जा सकती है। इनकी परंपराओं, रीतियों की प्रतिष्ठा का मुख्य माध्यम लोकसाहित्य ही बनता है। कह सकते हैं कि लोकसाहित्य के माध्यम से यहाँ के समाज की गूढ़तम मनोवृत्ति के करीब पहुंचा जा सकता है। यहाँ के लिखित साहित्य का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। फिर भी समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर अब इस क्षेत्र में भी पर्याप्त लेखन कार्य हो रहा है। इनके माध्यम से भारत के इस क्षेत्र के नागरिकों की संवेदनाओं को करीब से देखा जा सकता है।

खासी समाज में संपत्ति के नियम बांकी समाजों से बेहद अलग हैं। आम तौर पर व्याप्त जेंडर रोल के विपरीत यहाँ महिलाओं के पास संपत्ति रहती है। इसके लिए उन्होंने एक कथा विकसित की है। कथा का सार[114] यह है कि 'का रेम्यू' अर्थात धरती की मृत्यु के बाद उनकी अन्त्येष्टि की जिम्मेदारी उसकी बेटियों पर आती है। सबसे बड़ी बेटी सूरज ने सबसे पहले कोशिश की। पूरी ताकत लगा देने के बाद भी वह सफल नहीं हुई। इसके बाद अन्य पुत्रियां हवा, प्रकृति और पानी आती हैं और अपनी कोशिशें करती हैं लेकिन वे भी सफल नहीं होतीं। फिर आती है उनकी सबसे छोटी बेटी अग्नि। उसने सफलता पूर्वक अपनी माँ का रेम्यू की अन्त्येष्टि को संपन्न किया। संभवतः तभी से खासियों में माँ की वारिस सबसे छोटी बेटी को बनाने की प्रथा शुरू हुई। इस कथा का व्यवस्था की स्थापना और स्थायित्व में योगदान रहा होगा इससे इंकार नहीं किया जा सकता। इस मिथकीय कथा ने खासी आदिवासी समुदाय की स्त्रियों की बेहतर स्थिति को सुनिश्चित करने का प्रयास किया है। परंपरागत रूप से परिवार में फैसले लेने का हक़ सबसे बड़े मामा और पिता को होते हुए भी इस प्रथा ने स्त्री के हिस्से भी कुछ अतिरिक्त अधिकार दिए जो संतुलन की तरफ इशारा करता है। लेकिन पूर्वोत्तर के हर समाज में संपत्ति के देखरेख के लिए ऐसी स्पष्ट कथाएँ नहीं मिलती है।

---

[114] खरमाओफिलांग डेज्मंड, गुप्ता रमणिका (अनुवाद), 'महा माँ धरती(रेम्यू)', गुप्ता रमणिका (संपा।) पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन मिथक एवं लोककथाएं' नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 29-33

3.2 लोककथाओं में अभिव्यक्त विभिन्न कार्यस्थल (Space) में जेंडर

समाज यह तय करता है कि किस जेंडर की भूमिका कहाँ होगी, और इस तरह से एक 'Genderd Space' की निर्मिती होती है। किसी समाज में यह स्पेस बेहद नियंत्रित होता है तो किसी समाज में विभिन्न स्पेसों में विभिन्न जेंडर की आवाजाही संभव होती है। इसके उदाहरण के रूप में हम घर और बाहर को दो स्पेस की तरह समझ सकते हैं। समाज घर को स्त्री का स्पेस मानता है और पुरुषों का स्पेस बाहर होता है। पारंपरिक रूप से ऐसी धारणा आम रही है कि स्त्रियों की जगह रसोई में है। तथाकथित आधुनिक समाजों में भी इस तरह की वैचारिकता आम है। लेकिन पूर्वोत्तर के आदिवासी समाजों पर इस धारणा को थोपना उचित नहीं होगा। पूर्वोत्तर की लोककथाओं में तो इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि स्त्रियाँ युद्धों में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। यहाँ गौर करने वाली बात यह है कि आम धरना में माना जाता है कि युद्ध सिर्फ पुरुषों का क्षेत्र है, किन्तु आओ-नागा समाज की अकंग्ला (Akangla) की कथा[115] यह साबित करती है कि आओ-नागा समाज में स्त्रियों ने युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कथा तब की है जब विभिन्न गाँव के बीच बेहतर जगह और संसाधन के लिए युद्ध हुआ करते थे। यह कथा लोंगखुम (Longkhum) और नोकरांग (Nokrang) गाँवों के बीच के युद्ध का है। नोकरांग गाँव के योद्धाओं के बारे में यह माना जाता था कि उन्हें कोई हरा नहीं सकता। उनके पास बहुत खतरनाक शिकारी कुत्ते थे जो हमला करने वालों को खौफ से भर देते थे। लोंगखुम के पास बहुत अच्छे योद्धा थे लेकिन नोकरांग ने उनको हर बार हराया था। लोंगखुम के योद्धा

---

[115] Temsula Ao, The Ao-Naga Oral Tradition, Heritage Publication, Dimapur, 1999, page 165

एक बार फिर से नोकरांग पर हमला करने निकले। दोनों गाँवों के बीच दूरी बहुत अधिक थी इसलिए वे बीच रास्ते में एक मित्रवत गाँव वारोमोंग (Waromong) में रुके। अकंग्ला इसी गाँव में रहती थी और उसके घर में भी इस दस्ते के लोगों थोड़े समय के लिए रुक रहे थे। वे युद्ध के लिए उत्साहित थे लेकिन उन्हें नोकरांग योद्धाओं के साथ मिल कर लड़ने वाले कुत्तों की चिंता सता रही थी। इसलिए वे अकंग्ला के से सलाह लेने के लिए गए। अकंग्ला ने उन्हें सुना और कहा कि उनके कुत्तों की समस्या को एक बहुत ही साधारण उपाय से हटाया जा सकता है। और उसने युद्ध के शिकारी कुत्तों के खतरे से निपटने के कार्य की जिम्मेदारी अपने हाथ में ले ली।

अगले दिन उसने गाँव की सारी औरतों को बाल धो कर टूटे हुए बाल को जमा कर उसे देने के लिए कहा। एक बड़े बर्तन में वह चिपचिपा चावल बनाने लगी। उसने गाँव की औरतों द्वारा लाये गए बाल को चिपचिपे चावल के बीच डाल कर बहुत सारे गोले बना लिए। गोलों को लोंगखुम के योद्धाओं को देते हुए उसने निर्देश दिया कि अगले युद्ध में जब कुत्ते उनके पास आए तो इन गोलों को उनकी तरफ फेंक दे।

अगले दिन उन्होंने वैसा ही किया जैसा अकंग्ला ने उन्हें कहा था और कुत्ते अपने मुह से चिपचिपे चावल और बाल निकालने में इतना व्यस्त हो गए कि उन्हें आसानी से मार दिया गया। और उस दिन लोंगखुम ने नोकरांग पर विजय हांसिल की। इस जीत में अकंग्ला की महत्वपूर्ण भूमिका को याद करते हुए कई गाथाएँ और लोकगीत बना कर उसे अपनी स्मृति और इतिहास में अमर कर दिया।

यह कथा स्त्रियों के जेंडर आधारित कार्यक्षेत्र के प्रचलित धारणा को चुनौती देती है। नागा समाज के बारे में मान्यता है कि स्त्रियों को पुरुषों के भाले को छूने की मनाही है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध के क्षेत्र में महिलाओं की कोई भूमिका नहीं है। किन्तु यह कथा इस धारणा को तोड़ती हुई इतिहास की भुला दी गई महिलाओं को इस कार्यक्षेत्र में उसके योगदान को उचित सम्मान दिला रही है।

अध्याय 4.

पूर्वोत्तर की लोककथाओं में

‘निर्णय की प्रक्रिया’(Decision Making)

अध्याय 4. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में 'निर्णय की प्रक्रिया' (Decision Making)

पिछले कुछ वर्षों में निर्णय लेने की प्रक्रिया को सैधांतिक रूप देने का प्रयास किया जा रहा है। निर्णय की प्रक्रिया की अवधारणा को स्थापित करने के लिए अर्थशास्त्र, सामाज विज्ञान मनोविज्ञान जैसे तमाम क्षेत्रों से विचार लिया जा रहा है। परिवार या समाज के स्तर पर निर्णय लेने की शक्ति संबंधित परिवार एवं समाज में सत्ता के स्वरुप को निर्धारित करती है। इन निर्णयों से परिवार के हर छोटे-बड़े विषय जुड़े होते हैं। परिवार समाज की वह मूलभूत इकाई है जहाँ उत्पादन, प्रजनन, उपभोग और बच्चों के समाजीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत होती है।

किसी परिवार या समाज में 'निर्णय' का बहुत महत्व होता है। यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक जीवन से जुड़े मुद्दों पर आगे कैसे काम करना है यह तय किया जाता है। आम तौर पर लगभग हर समाज में निर्णय लेने की प्रक्रिया पर पुरुषों का आधिपत्य बना हुआ है। ऐसे में वे परिवार और समाज के अन्य सदस्यों के निर्णय लेने की प्रक्रिया पर भी प्रभाव डाल सकते हैं। इस तरह से समाज के अन्य सदस्यों के हक और स्वेच्छा के अतिक्रमण की आशंका बढ़ जाती है।

जेंडर के सन्दर्भ में निर्णय की प्रक्रिया लोगों के शिक्षा एवं रोजगार के अवसर, प्रजनन के अधिकार और स्वास्थ्य, जेंडर आधारित हिंसा और भेदभाव, जेंडर अस्मिता और अभिव्यक्ति, जेंडर दायित्व और रूढी आदि को प्रभावित करती है।

निर्णय की प्रक्रिया के लिए दो या दो से अधिक विकल्प का होना आवश्यक है। ऐसे में जब निर्णय लेने की प्रक्रिया में एक जेंडर के लोगों की भूमिका दूसरे से कम हो तब इन आवश्यक बिन्दुओं पर उनके फैसले कोई और लेने लगता है। और इस तरह से वे अपने ही जीवन के निर्णय लेने की आज़ादी खो बैठते हैं।

"Decision Making (निर्णय की प्रक्रिया) में हमेशा दो से अधिक विकल्प शामिल होते हैं, यह कभी भी किसी एक के साथ नहीं लिया जा सकता है। इसके लिए दो से अधिक पक्षों का होना आवश्यक होता है। यदि केवल एक ही विकल्प है, तो कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता है।'[116]

'निर्णय लेना एक महत्वपूर्ण क्रिया है। हमें कई तरह के कार्यों को करने के लिए निर्णय लेने होते हैं, जिसके लिए उचित निष्कर्ष निकालना आवश्यक होता है। Decision Making Process एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कोई लक्ष्य प्राप्त करने या किसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए लिया जाता है। Decision Making किसी भी कार्य के लिए हो सकता है, यह अपने व्यवसाय या किसी प्रबंधकीय निर्णय लेना या किसी निजी उद्देश्य के लिए हो सकता है।

'हरबर्ट साइमन ने निर्णय प्रक्रिया को तीन चरण में बाँटा है, वहीं न्यूमैन व वारेन ने चार चरणों में निर्णय निर्माण की प्रक्रिया को समझाया है।" इसी तरह सभी ने अलग अलग निर्णय निर्माण के चरणों को बताया है। इन में से मुख्य चरण, जो हमारे निर्णय की प्रक्रिया को सफल बनाने में मदद करता है वो हैं-

[116] https://skillinfolin/decision-making-process-in-hindi/

1. लक्ष्य निर्धारण 2. अपनी समस्या की विस्तार से व्याख्या करना तथा 3. समस्या का विश्लेषण'[117]

'जेम्स स्टोनर के अनुसार, - "Decision making is the process of identifying and selecting a course of action to solve a specific problem।" अर्थात् "निर्णय लेना एक विशिष्ट समस्या को हल करने के लिए कार्रवाई की पहचान करने और चुनने की प्रक्रिया है।"

ट्रिवार्था एवं न्यूपोर्ट के अनुसार- "Decision making involves the selection of a course of action from among two or more possible alternatives in order to arrive at a solution for a given problem।" अर्थात् "निर्णय लेने में किसी समस्या के समाधान के लिए दो या अधिक संभावित विकल्पों में से क्रिया का चयन शामिल होता है।"'[118]

पूर्वोत्तर के सन्दर्भ में निर्णय की प्रक्रिया की बात करें तो यहाँ दुनिया के अधिकांश समाजों की तरह पूर्वोत्तर के ट्राइबल समुदायों की सामाजिक व्यवस्था भी मुख्य रूप से पुरुषों के नियंत्रण में हैं। अध्ययित समुदायों में से आओ, आदी और मिज़ो समाज की सामाजिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक है। वहीं खासी समाज मातृवंशीय सामाजिक व्यवस्था का पालन करता है। इन समुदायों में पारंपरिक प्रथागत-विधि (कस्टमरी लॉ) का पालन किया जाता है। ये कानून वाचिक परंपरा पर आधारित है, इनको कूटबद्ध नहीं किया गया है। इन समाजों में पारंपरिक रूप से सामाजिक-राजनीतिक फैसलें लेने का अधिकार पुरुषों

---

[117] https://skillinfo।in/decision-making-process-in-hindi/

[118] https://in।ilearnlot।com/2019/03/Decision-Making-Introduction-Definition।html

के पास है। ऐसे में महिलाओं के सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकार सीमित हो जाते हैं। आओ, आदी और मिज़ो समाज में पैतृक संपत्ति के अधिकार के मामले में भी स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। खासी समाज में वंश माँ के नाम पर चलता है और शादी के बाद महिलाएँ अपना घर छोड़ कर नहीं जाती हैं। खासी समाज में संपत्ति स्त्रियों के देखरेख में होती है। मातृक संपत्ति की जिम्मेदारी सबसे छोटी बेटी को मिलती है, किन्तु वे मातृक संपत्ति को अपनी इच्छा से बेच नहीं सकती हैं। ये फैसले बड़े मामा या पिता के पास ही होता है। हाल के वर्षों में महिलाओं के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों की मांग उठने लगी हैं। एक साक्षात्कार में प्रो. तेम्सुला आओ ने शोधार्थी को बताया कि नागालैंड में महिलाओं ने संगठित हो कर मांग उठाई कि उन्हें कम से कम पिता की अर्जित संपत्ति का अधिकार महिलाओं को भी मिले, उनके अनुसार बड़ी संख्या में पुरुष आगे आये और उन्होंने अपनी बेटियों को अपनी अर्जित संपत्ति से हिस्सा देने की पहल की, किन्तु उसी समय नागालैंड के निकाय चुनाओं में महिलाओं को आरक्षण देने की बात उठी और बड़ी संख्या में पुरुष इसके खिलाफ हो गए और महिलाओं के कुछ अधिकारों को सुनिश्चित करने की पहल पीछे हो गई। किन्तु पूर्वोत्तर में अकादमिक जगत, लेखन, कला और व्यापार में महिलाएँ बेहद मजबूती से आगे बढ़ रही हैं। लेखन जैसे क्षेत्रों में तो महिलाएँ ही प्रतिनिधित्व कर रही हैं।

ऐसा नहीं है कि किसी समाज में महिलाऐं सर्वथा शक्तिहीन ही रहती हैं। न तो सारे पुरुष सामाजिक सत्ता पर आधिपत्य रखते हैं और न ही सारी स्त्रियाँ सामाजिक सत्ता के बोझ तले दबी हैं। दोनों जेंडर के लोग सत्ता और शक्ति के मामले में एक दूसरे के खेमे में आते-जाते हैं। पूर्वोत्तर की लोककथाओं में निर्णय की प्रक्रिया के कई स्वर सुनाई पड़ते हैं।

स्त्रियों के पास पारंपरिक रूप से कुछ अधिकारों का न होना एक विचार का विषय है जिसे संबंधित समाज के लोगों को आपस में स्वयं संबोधित करना चाहिए। इसके साथ ही हमें यह समझना होगा कि समाज में नियम-कानून अक्षरशः पालन नहीं होते। औरतें भी पितृसत्ता के बीच अपने हितों को सुनिश्चित करने का प्रयास करती ही हैं। भले ही महिला दरबार या बैठक में न जाए लेकिन वह अपने पति या बेटे को घर के अन्दर अपनी बात बताती है। उनकी बात घर के पुरुषों के माध्यम से पहुँच जाती हैं. हमें निश्चित रूप से एक ऐसे समाज बनाने की ओर अग्रसर होना चहिये जहाँ जहाँ बराबरी हो, लेकिन समाज अपने साथ बहुत जटिलताएं समेटे हुए रहता है, ऐसे में हमें छोटी से छोटी उम्मीद की भी सराहना करनी चाहिए।

4.1 'निर्णय की प्रक्रिया' में विभिन्न 'जेंडर' की भूमिका

'जेंडर' सभ्यताओं की देन है। समाज ने जैविक लिंग के लिए 'भूमिकाएँ' तय कर दी। इन भूमिकाओं के पालन का दवाब सभी लिंगों पर रहता है। पितृसत्तात्मक समाज में यह जेंडर विभेद बहुत मजबूत हो जाता है। पुरुष को सबसे महत्वपूर्ण मानना और सत्ता का नियंत्रण उसके पास होना पितृसत्ता का मूल है। ऐसी व्यवस्था में पुरुष अन्य जेंडर पर अपना आधिपत्य बनाने का प्रयास करते रहता है। पुरुषों का यह आधिपत्य एक दमनकारी पितृसत्तात्मक समाज का निर्माण करता है।

विवाह का निर्णय किसी भी व्यक्ति के लिए बहुत महत्वपूर्ण निर्णय होता है। दुनिया भर में विवाह के निर्णय का नियंत्रण कहीं स्वयं व्यक्ति के पास रहता है तो कहीं परिवार और समाज उसके लिए तय करता है। भारत के अधिकांश समाजों में विवाह का निर्णय माता-पिता के नियंत्रण में रहता है। इससे कई बार लोगों की व्यक्तिगत भावनाओं और इच्छाओं का दमन भी होता है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों में पारंपरिक रूप से अपनी पसंद से विवाह करना स्वीकार्य रहा है। किन्तु इसके लिए उन्हें अपने माता-पिता की सहमती लेनी आवश्यक होती है। लोग बिना माता-पिता की सहमती के भी विवाह करते हैं। अधिक सामाजिक दवाब तब आता है जब कोई अपने समुदाय से अलग किसी समुदाय में शादी करना चाहे। लेकिन यह भारत के अधिकाँश समाजों का यथार्थ है।

आदिवासी समाजों के अध्ययन के क्रम में गैर आदिवासी शोधार्थी अक्सर अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं हो पाते हैं। उपनिवेशी मानसिकता से प्रभावित लोग अपने समाज और परंपरा को गर्विता बोध के साथ देखते हैं और आदिवासी समाज की परंपरा, संस्कृति

एवं भाषा को अपने से हीन मानते हैं। अंग्रेजों ने इसी मानसिकता के द्वारा भारत के लोगों के ऊपर अपनी सांस्कृतिक प्रभुता स्थापित करने का काम किया था। किंतु आज जब आजादी के बाद एक लंबे समय तक पूर्वोत्तर भारत राजनीतिक, अकादमिक आर्थिक रूप से हाशिए पर रहने के बाद अपने सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों की मांग को आगे रखते हुए मुख्यधारा को चुनौती देने की स्थिति में है उस समय भी पूर्वोत्तर के बारे में शेष भारत के बुद्धिजीवी एवं शोधार्थी पूर्वोत्तर भारत का अध्ययन अपनी उपनिवेश इस मानसिकता से पूर्णत: मुक्त होकर नहीं कर पा रहे हैं।

पूर्वोत्तर भारत के आदिवासी समाज के लोग अपने आपको किस तरह से देखते हैं, अपनी संस्कृति को किस तरह से जीते हैं अपनी परंपरा को किस तरह से मानते हैं, जब तक इस चीज को हम गहराई से समझने का प्रयास नहीं करेंगे तब तक कोई भी शोधकार्य इमानदारी से नहीं हो सकता है।

शोधार्थी का संबंध पूर्वोत्तर भारत से करीब 9 वर्षों का है, शोधार्थी अपने आप को पूर्वोत्तर से बहुत गहराई से जुड़ा हुआ महसूस करता है। पूर्वोत्तर की समस्याओं को अपनी समस्या मानता है फिर भी शोधार्थी के लंबे गैर-आदिवासी, गैर-पूर्वोत्तर जीवन और अनुभवों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव उसके वैचारिकता पर पड़ ही जाता है। एमफिल के दौरान एक खासी लोककथा 'पंडुक गुटर गू क्यों करते हैं'[119] के विश्लेषण के दौरान हमनें लिखा कि "अक्सर सामाजिक रूप से मान्य नियमों की प्रतिष्ठा के लिए ऐसे मिथक गढ़े जाते हैं जिनके द्वारा आदर्श अथवा भय आदि के माध्यम से नियमों का पालन पीढ़ियों

[119] सावियान विजोया,'यू मनिक रायतांग, कैस अकील (अनुवाद) गुप्ता रमणिका (संपा।) पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन मिथक एवं लोककथाएं' नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ 153

तक चलता रहे। इस लोककथा में खासी समाज में अपने वर्ग से बाहर विवाह न करने की सलाह दी जाती है। यह समाज द्वारा स्त्री की यौनिकता पर नियंत्रण करने का प्रयास है। समाज डर के द्वारा स्त्रियों को अपने समाज से बाहर के प्रेम करने से रोकने का प्रयास कर रही है। यह कथा मुख्यतः समान वर्ग में ही विवाह करने की परंपरा को स्थापित करने के उद्देश्य से विकसित किया गया होगा। स्त्री को अपना वर चुनने की आजादी तो खासी समाज देता है किन्तु ऐसे मूल्यों को स्थापित करती कथा स्त्री को मुक्त मन से अपने फैसले लेने से रोकती होगी।"[120]

किन्तु छः साल के अतिरिक्त अध्ययन के बाद वर्तमान में शोधार्थी अपने विचारों को चुनौती देते हुए अपने एमफिल लघु शोध-प्रबंध के इस विचार में संशोधन प्रस्तुत करता है। इस लोककथा का सार यह है कि पंडूकों का एक झुण्ड एक बेर के पेड़ पर रहता था। उस समय पंडूक बहुत सुन्दर गीत गाते थे। उस झुण्ड में एक युवती पंडूक थी। बेर के पेड़ में बहुत फल आए। उस दौरान एक अन्य प्रजाति का बहुत सुन्दर पक्षी उस पेड़ पर आता है। युवती पंडूक उस अन्य समूह के पक्षी से प्रेम करने लगती है। परिवार और समाज के लोग उसे रोकते हैं। युवती पंडूक के न मानने पर उन्होंने उसे पतझड़ आने तक रुकने को कहा। पतझड़ आते ही वह पक्षी बेर की पेड़ से गायब हो गया। इस धोखे और विरह से व्यथित होक वह रोते-रोते प्राण त्याग देती है। उसके परिवार के अन्य पंडूक भी इस त्रासदी पर रोते रहे और लगातार रोने के कारण उनके गले का गान समाप्त हो गया। और तब से पंडूक गुटरगूं करने लगे।

---

[120] सेतु कुमार वर्मा, मैथिली एवं खासी लोककथाओं में स्त्री, एमफिल, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग, 2016

एमफिल के दौरान हमारे द्वारा किया गया यह विश्लेषण ट्राइबल समाज पर मुख्यधारा के नारीवाद का सीधा-सीधा प्रत्यारोपण था। इस विश्लेषण में समाज के जिए हुए यथार्थ, पीड़ादायक इतिहास, कटु अनुभवों की संभावनाओं को पूरी तरह से नज़रअंदाज किया गया। हम जानते हैं कि अक्सर वर्ग के अलग होने से वैवाहिक रिश्तो में परेशानी आ सकती है, ऐसे में अगर समाज अपने से बिल्कुल भिन्न वर्ग में विवाह करने के प्रति सचेत कर रहा हो तो इसे हम पूरी तरह नकारात्मक रूप से नहीं देख सकते हैं। ऐसे कई उदाहरण शोधार्थी ने अपने आंखों के सामने देखे हैं जहां शेष भारत से लोग पूर्वोत्तर व्यवसाय के सिलसिले में आते हैं, पूर्वोत्तर में ही वहाँ की ट्राइबल महिला से शादी करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं और थोड़े समय बाद उन्हें छोड़कर अपने गांव वापस भाग जाते हैं। इस तरह के तमाम कटु अनुभवों ने पूर्वोत्तर के समाजों को बाहरी लोगों के प्रति सहज अविश्वास से अगर भर दिया हो तो इसमें उनकी चिंता बिलकुल जायज दिखती है।

किसी समाज के जेंडर संबंधों को समझने के लिए उस समाज के जिए जा रहे संबंधों के स्वरूप को उनकी आंखों से देखने की आवश्यकता है। हम जानते हैं कि जेंडर के आधार पर काम का बंटवारा किया जाता रहा है, लेकिन हमें यह समझना होगा किन कामों के प्रति समाज सोचता क्या है। क्या एक काम का बहुत महत्व और दूसरे काम को कोई महत्व नहीं है! क्या समाज की नजर में शिकार करना ही सब कुछ है और कपड़े बनाना कुछ भी नहीं! या फिर ऐसा है कि समाज स्त्रियों को कपड़े बनाने का अधिकार देकर उन्हें आर्थिक और सामाजिक रुप से एक महत्वपूर्ण ताकत दे रहा है। अक्सर यह देखा गया है कि शिकार करना या पैसे कमा कर लाना अधिक महत्व का काम माना जाता है, लेकिन पूर्वोत्तर की आदिवासी महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण

नहीं देखा गया है। ऐसे में हमें सोचना होगा कि पश्चिमी नारीवाद की अवधारणा को आदिवासी समाज पर थोपना क्या उचित होगा? शोधार्थी से बातचीत के क्रम में शिलांग में पुमाई नागा समुदाय के शोधार्थी एलवी शाहीनी ने कहा कि हमारे यहां शिकार करना जितने महत्व का काम है, वस्त्र बनना भी उतने ही महत्व का माना जाता है ऐसा नहीं है कि स्त्रियों के काम का महत्व कम है और पुरुषों का अधिक।

विवाह संबंधी आदी लोककथा एक अलग पक्ष प्रस्तुत करती है। आदी समाज पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था का पालन करता है। 'दो हृदय एवं दो वृक्ष'[121] कथा में, 'नोतेक' नामक युवती जो बहुत सुन्दर थी, अपने किसी रिश्तेदार के गाँव जाती है। वहां उसकी मुलाकात एक बेहद आकर्षक युवक 'कोक्केंग' से होती है। दोनों में प्रेम हो जाता है। लड़के का पिता इस रिश्ते के खिलाफ था, कि कैसे उसका बेटा किसी दूर के गाँव की अनजान लड़की से विवाह कर सकता है। गाँव में रहते हुए अपने रिश्ते पर खतरा महसूस कर दोनों बाहर भाग जाते हैं। कुछ समय बाद उन्हें अपने परिवार की याद सताने लगती है और अपने परिवार द्वारा माफ़ करके स्वीकार कर लिए जाने की उम्मीद से वे दोनों वापस लौट रहे होते हैं। लड़के के पिता को इसकी खबर लग जाती है। जब वे दोनों नदी पर स्थित पुल को पार कर रहे थे तो उसके पिता ने पुल की रस्सी को कटवा दिया। नोतेक और कोक्केंग नदी में डूब जाते हैं। दोनों का शव नदी के दोनों किनारों पर लग जाता है। कुछ समय बाद दोनों स्थान पर पीपल के दो पेड़ उगते हैं और बड़ा होने पर नदी के दोनों किनारों पर स्थित ये पेड़ एकदूसरे से लिपट जाते हैं। आदी लोक की मान्यता है कि ये पेड़

---

121 Obang Tayeng, 'Two hearts and two trees', Folk tales of the Adis, Mittal publication, New Delhi, 2003, page 99-102

नोतेक और कोक्केंग की कड़वाहट से भरी हुई आत्मा है। भले ही वे अपने प्रेम-मिलन को जीवित अवस्था में पूर्ण नहीं कर पाए किन्तु मर कर उन्होंने ऐसा कर लिया।

इस कथा विशेष पर गौर करें तो यही समझ में आता है कि आदी लोककथा में सिर्फ लड़की के फैसलों पर ही नहीं अपितु लड़कों पर भी परिवार का नियंत्रण हो सकता है। लड़के का पिता लड़की को इसलिए स्वीकार नहीं कर रहा था क्योंकि वह अनजान थी और किसी दूर के गाँव से थी।

आदी समाज की 'बोमोंग और बू'[122] कथा को देखते हैं,

पहले दुनिया में दो सूर्य हुआ करते थे, 'बोमोंग' और 'बू'। दोनों रोज पूरब में एक के बाद एक उगते और लोगों को अपनी असीमित ऊष्मा से पीड़ित करते। इस गर्मी से तंग आकर लोगों ने एक बैठक बुलाई और फैसला किया कि एक सूर्य को मार दिया जाए ताकि उन्हें अत्यधिक गर्मी से राहत मिले। यह जिम्मेदारी इट्टुंग तिकलुंग (Ettung Tiklung) नाम के मेंढक को दी गई। इट्टुंग तिकलुंग धनुष और कुछ जहर बुझे बाण लेकर 'बू' की तरफ बढ़ा। बेहद ऊष्मा उत्सर्जित करते सूर्य के पास पहुँच कर उसने जहर बुझे तीर से 'बू' पर हमला कर दिया। 'बू' तुरंत उस वार से निश्तेज हो गया। उसकी मृत्यु के दृश्य को देख कर लोगों ने चैन की साँस ली।

लेकिन जब 'बोमोंग' को 'बू' की हत्या का पता चला तो उसका दिल टूट गया। वह बहुत दुखी हो गई, उसने दुबारा रौशनी देने से मना कर दिया। पूरी दुनिया अँधेरे में डूब

---

122 Obang Tayeng, 'Bomong and Boo', Folk tales of the Adis, Mittal publication, New Delhi, 2003, page 31-32

गई और चारों तरफ हाहाकार मच गया। लोगों ने फिर से सभा बुलाई और फैसला किया कि सूर्य को मानाने के लिए मुर्गे को भेजा जाएगा। फिर मुर्गा इस उद्देश्य को पूरा करने सूर्य की तरफ उड़ चला। सूर्य के पास पहुँच कर उसने जनता के आग्रह से अवगत कराया और उसे दुबारा अपनी रौशनी प्रदान करने के लिए तर्क दिए। लेकिन वह नहीं मानी। इसके बाद लोगों ने हवा को यह जिम्मेदारी दी कि वह सूर्य को वापस बुला लाए। 'बोमोंग' के पास पहुँच कर वह मुर्गे को सूरज के साथ अन्तरंग शारीरिक संबंध बनाते हुए देख घबरा गया। इसलिए वह तुरंत धरती वापस आ गया और लोगों को इस शर्मनाक कार्य के बारे में बताया। अंत में लोगों ने कौवा को नियुक्त किया कि वह सूर्य के पास जाए और उन्हें मनाए कि वह पीड़ित मानवता के प्रति दया करे और उन्हें क्षमा करे। अंततः वह एक शर्त के साथ दुबारा उगने के लिए मान गई अगर रोज उगने के साथ पांच सौ लोग अर्पित किये जाएँ और पश्चिम में डूबने के समय फिर से पांच सौ लोग अर्पित जाएँ। राजी होने के बाद सूर्य कौवे से बोली, "तुम आज से दुनिया में मृत्यु के सन्देश वाहक कहलाओगे। गाँव गाँव उड़ों क्योंकि तुम लोगों को नसीब बताओगे। मैं तुम्हें एक बड़े भविष्यवक्ता और संदेशवाहक होने का आशीर्वाद देती हूँ।" तब से कौवा मृत्यु का संदेशवाहक बन गया है। वह आज भी जगह-जगह उड़ के मनुष्य के भविष्य में आने वाली अप्रिय समाचारों के बारे में सन्देश देता रहता है। जब 'बोमोंग' दुबारी उगी तो मुर्गे ने उसे पूरब में सबसे पहले देखा। उसने तुरंत वह खुशखबरी लोगों को अपने बांग के द्वारा दी। जब वह यह समाचार दे रहा था तो उसने अपने दोनों पैर एक दर्रे के दोनों चोटियों 'दोन्यी गेगे पोकोक' (Donyi Gege Pokok) पर रखा हुआ था। जब मुर्गा दोनों छोटी पर पाँव रखें सूरज के उगने का

इंतजार कर रहा था मानव सहित सारे जीवित प्राणी उस दर्रे से होते हुए उसके बीच से निकले। इसकी वजह से उसके लीवर ने सभी जोवों के प्राणतत्व को ग्रहण कर लिया। इसलिए आज पुजारी मुर्गे के लीवर की मदद से लोगों के भविष्य को बताते हैं।

'इट्टुंग तिकलुंग' के वार के बाद 'बू' का रंग पीला पड़ गया और वह निष्क्रिय हो गया। बाद में वह चाँद बन गया और कोमल और पीला प्रकाश उत्सर्जित करने लगा। उसके बाद से दुनिया में दिन और रात होने लगी जिससे मनुष्य आराम और नींद लेने में सक्षम हुए। चूँकि कौवे ने वादा किया था, वह सूर्य को पांच सौ लोग दिन में और अन्य पांच सौ लोग रात में अर्पित करने लगा। इस वजह से सूर्य के एक चक्र में लोगों का मरना शुरू हो गया। चूँकि लीवर ने सारे प्राणतत्व को ग्रहण कर लिया था इसलिए आज भी पुजारी मुर्गे के लीवर से अनुष्ठान करते हैं। ऐसा माना जाता है कि आज भी उसके लीवर में मनुष्य का भविष्य और भाग्य है।

'बोउम काकिर'[123] कथा को देखते हैं, एक समय की बात है, किसी गाँव में बोउम काकिर नाम का अनाथ बच्चा अपने चाचा के साथ रहता था। उसका चाचा हृदयहीन और लालची इंसान था जो उसे सिर्फ ख़ुशी और आराम से दूर रखने के लिए आश्रय प्रदान किया था। बच्चे की मासूमियत और बेचारगी का फायदा उठा कर इस चालाक आदमी ने बच्चे को उसके पैत्रिक संपत्ति से बेदखल कर दिया। जल्द ही काकिर के कीमती औजार, बर्तन, जमीन सभी चाचा ने हड़प लिया। उसकी पत्नी, एक

[123] Obang Tayeng, 'Bomung Kakir', Folk tales of the Adis, Mittal publication, New Delhi, 2003, page 51-53

असंवेदनशील और चालाक औरत भी कोई बेहतर नहीं थी। काकिर के दैनिक पीड़ा पर उसने विरले ही कभी ध्यान दिया।

ऐसा कई बार होता जब काकिर को बिना भोजन के पूरा दिन बिताना पड़ता था। काकिर भूख से विचलित होकर रोता रहता। बांस के बरामदे पर बैठ कभी डूबता हुए सूरज को देखता तो कभी चमकते हुए चाँद को देख कहता,

“माँ, जब से आप गई हो,
पिता, जब से मैं अनाथ हुआ हूँ,
न तो मैं अपने घर का ख्याल रख पाया
न ही अपने आप का

अपना खेत जो आप छोड़ के गए
अब बंजर और वीरान पड़ा है
मैं असहाय और निराश हूँ
मेरे अप्रत्यासित और पीड़ादायक जीवन से”

काकिर को किसी भी मामूली बात के लिए बुरी तरह से पीट दिया जाता। जब उसकी चाची अपने बच्चों को खाना परोसती तो काकिर पर ध्यान नहीं देती। उसका दुष्ट चाचा अपने बच्चों को उसके कंधे के ऊपर से अपोंग बढ़ाता था। पूरे गाँव में सिर्फ एक

ही इंसान उसके पीड़ा के प्रति संवेदनशील थी। वह थी उसकी बुआ, गागी। अपने भतीजे की पीड़ा को देख उसका दिल रोता था। वह कई बार उसे चुपके से अपने घर बुला समझाती, “मेरे भतीजे, इन सभी तकलीफ के प्रति सहनशील बने रहो। जब तुम बड़े होकर मर्द बन जाओगे तब तुम अपना ख्याल रखने लगोगे। तब तुम अपना घर भी बना पाओगे, अपने खेत में अनाज भी उपजा पाओगे। ‘दोन्यी-पोलो’ में भरोसा रखो और अपने बड़ों की बात मानों, भले ही तुम्हें परेशानी हो”

बहुत दिन बीत गया, काकिर किशोरावस्था में पहुँच गया था। काकिर ने जीवन के बारे में बहुत कुछ सीख लिया था। एक दिन वह अपने बुआ के घर गया और उनसे एक धनुष और कुछ तीर मांगे कि वह कुछ खेल के लिए जंगल जाना चाहता है। उसकी बुआ ने उसे अपना ख्याल रखने के लिए कहा और धनुष, तीर दे दिए।

शाम में काकिर एक जंगली पक्षी लेकर आया और अपनी चाची को दिखाया। उसका चाचा, जो उसके कौशल से चकित था, पूछने लगा तुमने इसका शिकार कहाँ किया? इसपर काकिर ने जवाब दिया,

“उस जगह से जहाँ मुझे गाली दिया गया, जहाँ मुझे पीटा गया उस जगह से जहाँ अपोंग मेरे कंधे के ऊपर से बढ़ाया गया।”

इसी तरह एक बार काकिर ने एक जंगली सूअर का शिकार किया और अपनी बुआ के यहाँ ले आया। वह अपने भतीजे के शिकार के कौशल और हिम्मत से बहुत खुश और गर्वान्वित थी। तुरंत ही यह खबर गाँव में फ़ैल गई कि काकिर ने जंगली सूअर का शिकार किया है। उसके चाचा के साथ-साथ गाँव के सभी लोग बुआ के घर पहुँचे। जब

उसके चाचा ने पूछा कि तुमने इस सूअर को कहाँ मारा, इसपर काकिर ने चिढ़ाते हुए जवाब दिया,

“उस जगह से

जहाँ मैं खाने के लिए रोया

उस जगह से

जहाँ मैं प्रेम और लगाव के लिए तड़पा”

इस जवाब ने उसके चाचा के चेहरे का रंग लाल कर दिया। फिर भी लालची आदमी ने अपना हिस्सा लिया और शाम में अपने परिवार के साथ उसे मज़े से खाया।

अपनी बुआ के निर्देशन में और अपने आसपास की चीजों को देखते हुए काकिर एक बुद्धिमान और मेहनती युवा बन गया। समय के साथ उसने अपना घर बना लिया और जंगली पक्षी एवं सूअर भी रख लिया। उसने एक मादा मिथुन ख़रीदा जो नियमित रूप से बछड़ों को तब तक जन्म देती रही जब तक उसके आँगन में मिथुन का एक झुण्ड न बन गया। वह अपने खेतों में अनाज उपजाने लगा, जल्द ही इतना अनाज होने लगा कि वह स्वयं और अन्य लोगों के लिए पर्याप्त होने लगा।

पर्व-त्योहारों के दौरान काकिर भोज आयोजित करता और पूरे गाँव को आमंत्रित करता। समय के साथ समाज में उसका महत्व बढ़ता गया। उसके मेहनत, लगन और दोन्यी –पोलो में विश्वास ने उसे सभी कठिनाइयों से लड़ने की शक्ति प्रदान की और अपने हर सपने को पूरा करने के लायक बताया। बुआ गागी हमेशा की तरह दिलदार और

लगाव रखती रही और काकिर के सदा बढ़ते रहने वाले सफलता को देख कर गर्व करती रही।

'ततैया और जुगनू'[124] एक ऐसी आदि लोककथा है जिसमें हमें बहुविवाह के तत्त्व दिख सकते हैं। कथा का सार है,

जुगनू और ततैया दोनों की शादी 'रोबो' से हुई थी। 'रोबो' घने जंगलों में ऊँचे पदों पे बसने वाली आत्माओं के प्रधान थे। एक ही पति होने के कारण दोनों अक्सर लड़ते थे और एक दूसरे को नुकसान पहुँचाने के प्रयास में लगे रहते थे।

एक दिन दोनों पत्नियाँ घास छांटने के लिए खेत गई। सूरज को डूबने में अब भी एक बांस के खम्भे जितना समय बांकी था, ततैया ने जुगनू से कहा, "चलो अब घर की ओर चलते हैं। सूरज पहाड़ के पीछे छुपने ही वाली है।" इसके जवाब में जुगनू ने कहा, "अभी सूरज डूबने में बहुत समय है। बल्कि अभी तो खेत में बहुत खर-पतवार निकालना बांकी है।" थोड़े समय बाद ततैया ने फिर से जुगनू को धिर रहे अँधेरे का ध्यान दिलाया और कहा कि "जब तक हमलोग घर पहुंचेंगे बहुत अँधेरा हो जाएगा, चलो अब आज के दिन के यहीं समाप्त करते हैं।" ततैये की विनती के बाद भी जुगनू ने कोई ध्यान नहीं दिया और खर-पतवार निकालती रही।

ततैया घिर रहे अँधेरे से परेशान हो उठी और जुगनू को देरी के लिए बुरा-भला कहने लगी। अंततः, जब पश्चिम में सूरज डूब गई वे घर वापस जाने के लिए निकले। घने

[124] Obang Tayeng, 'The Firefly and the Wasp', Folk tales of the Adis, Mittal publication, New Delhi, 2003, page 55-56

जंगल वाले रास्ते में काफी अँधेरा था। रास्ते में ततैया रगड़ती, लड़खड़ाती जा रही थी और उसका सर और शरीर झाड़ियों और पेड़ों से टकरा रहा था। उत्तेजित होकर वह जुगनू को कोसने के बाद असहाय रोने लगी। और आगे न बढ़ पाने के कारण ततैया ने एक पास के पेड़ में एक छेद किया और रात वहीं बितायी। अगली सुबह वह घर वापस जाना चाहती थी लेकिन 'रोबो' को अपना चेहरा दिखने का हिम्मत नहीं जुटा पाई। शर्म के मारे उसने फैसला किया कि वह अब हमेशा जंगलों में पेड़ में छेद करके रहेगी।

वहीं, जुगनू को अँधेरे से कोई ख़ास परेशानी नहीं थी। रास्ते में अपनी चमक छोड़ते हुए वह उल्लासपूर्वक तेजी से अपने आगे बढ़ती रही, लेकिन ततैया कोसती रही और अपनी किस्मत पर रोती रही।

तब से ततैया पेड़ों में रहती है। वह आज भी रोती है और अपनी भिनभिनाहट से जुगनू को कोसती है, वहीं जुगनू अपनी चमक से ततैया को चिढ़ाती रहती है।

यह कथा बहुविवाह के परिप्रेक्ष्य में पत्नियों के बीच होने वाले तनाव को व्यक्त करती है। पिछले कुछ वर्षों से अरुणाचल प्रदेश में कई महिला संगठन इसके खिलाफ आवाज़ उठा रही हैं।

अध्याय 5.

पूर्वोत्तर की लोक कथाओं का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष

अध्याय 5. पूर्वोत्तर की लोक कथाओं का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष

लोक कथाएं किसी समाज की सांस्कृतिक विरासत होती हैं। हम जानते हैं कि लोक कथाओं का निर्माण समाज सामूहिक रूप से करता है अतः समाज के विभिन्न तत्वों की उपस्थिति लोक कथाओं में सहज रूप से होती है। लोक कथाएं पीढ़ी दर पीढ़ी वाचिक रूप से आगे बढ़ती है, इसलिए इसमें सामाजिक जीवन और संस्कृति का सहज चित्रण मिलता है। परिवार समाज के इकाई के रूप में समाज की सामूहिक संस्कृति का वाहक होता है। किसी समुदाय के पीढ़ियों में विकसित परंपराओं, जीवन पद्धति, लोकवृत्त आदि के द्वारा संस्कृति का निर्माण होता है। यह संस्कृति समाज की ज्ञान परंपरा, दर्शन, जीवन दृष्टि, रूढ़ी एवं विश्वास आदि का परिचायक होती है। समाज और संस्कृति एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। यह सही है की संस्कृति एक विशाल अवधारणा है जो अपने अंदर किसी समुदाय के अनेक पीढ़ियों से विचार ग्रहण करती निर्मित होती है। यह सतत परिवर्तनशील होती है। लेकिन किसी वक्त हमें ऐसा लग सकता है कि संस्कृति से हम हैं हमें कई बार यह भी बताया जाता है की संस्कृति के मूल्यों से भटकना अपने समाज से धोखा देना होता है। क्या ऐसा नहीं है कि समय-समय पर समाज भी संस्कृति के रूप को प्रभावित करता रहता है और इस तरह से संस्कृति में सहज बदलाव आते रहते हैं। समाज और संस्कृति इस तरह से एक दूसरे के साथ परस्पर संबंध बनाए रखती है। लेकिन ऐसा भी देखने को मिला है कि कई बार संस्कृति ने तत्कालीन समाज को ऐसे फैसले लेने के लिए प्रेरित किया है जो उस समय के हिसाब से बहुत उचित नहीं कहा जा सकता। समाज और संस्कृति के आपसी आदान-प्रदान में इस प्रकार की जद्दोजहद होती ही रही है।

पूर्वोत्तर भारत की सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में हम जानते हैं कि यह आज भी यहाँ सामूहिक जीवन पद्धति का प्रचलन है। इससे सामाजिक जीवन कि कुछ बेहद सकारात्मक पहलू देखने को मिल सकते हैं। जैसा कि हमने प्रथम अध्याय में देखा कि पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदाय सामूहिक जीवन पद्धति अपनाते हैं। अगर समाज में किसी एक परिवार में कोई कार्य हो तो पूरा समाज उस कार्य को अपना मानता है और उसमें अपनी भूमिका निभाता है। चाहे वह घर बनाना हो या फिर खेती में मदद। मरण-जन्म हो सभी एक दूसरे की मदद करते हैं और इस तरह से सामूहिक जीवन की प्रतिष्ठा होती है। इसका असर उस समाज की जीवन दृष्टि पर भी पड़ता है। लोग आत्म केंद्रित जीवन के बजाय सामूहिक जीवन पर अधिक देते हैं। जीवन जीने की यह पद्धति इन समाजों की संस्कृति को रूप देती है। आगे आने वाले पीढ़ियों को अपने जीवन दर्शन को सिखाने के लिए समाज लोक कथाओं, गीतों, नृत्यों, कहावतों, कलाओं आदि का सहारा लेती है।

पूर्वोत्तर की लोक कथाओं का एक बहुत महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इन कथाओं में पूर्वोत्तर के समाज के ना सिर्फ दर्शन बल्कि इतिहास बोध कीजिए झलक मिलती है। लोग कथाओं के माध्यम से आदी, खासी, नागा एवं मिजो जैसे तमाम आदिवासी समुदायों की लोक कथाओं में अपने मूल आज इतिहास को याद रखने की कोशिश दिखती है। चाहे वह 'ओरिजिन स्टोरी' हो या फिर कोई भौतिक परिघटना, पूर्वोत्तर की लोक कथाओं में संबंधित समाज और उसकी संस्कृति के अंश दिखाई पड़ते हैं। ये कथाएं न सिर्फ उन समाजों का जीवन व्यक्त करती हैं बल्कि उनकी अपेक्षाएँ एवं आकाक्षाएँ भी अभिव्यक्त होती हैं। पारंपरिक उत्सव एवं त्यौहार के दौरान आओ, आदी खासी एवं मिजो

समाज में स्त्री-पुरुष को देखते हैं[125],

चित्र 5.1 : पारंपरिक चावल का शराब बनातीं आदी स्त्री

[125] सभी चित्र गूगल सर्च से प्राप्त

चित्र 5.2 : पारंपरिक लोकनृत्य का प्रदर्शन करते आदी पुरुष

चित्र 5.3 : पारंपरिक लोकनृत्य का प्रदर्शन करते आओ स्त्री-पुरुष

चित्र 5.4 :पारंपरिक लोकनृत्य के दौरान खासी स्त्री

चित्र 5.5 : पारंपरिक लोकनृत्य के दौरान खासी पुरुष

चित्र 5.6 : पारंपरिक लोकनृत्य का प्रदर्शन करते मिज़ो स्त्री-पुरुष

इन चित्रों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सांस्कृतिक विविधता के मामले में पूर्वोत्तर बेहद समृद्ध है। हर समाज की अपनी अलग पहचान है। परंपरा, रीतिरिवाज, भाषा, वस्त्र, नृत्य, संगीत आदि क्षेत्रों में पूर्वोत्तर की विविधता इस बात की ओर ध्यान दिलाती है कि एक भौगोलिक क्षेत्र होने के बावजूद पूर्वोत्तर के समाज एक दूसरे से अलग पहचान बनाए हुए हैं। ऐसे में इनके बीच जेंडर सम्बन्धी मुद्दों का तुलनात्मक अध्ययन रोचक हो जाता है।

5.1 लोककथाओं में अभिव्यक्त समाज एवं जेंडर

समाज वह 'स्पेस' है जहाँ लोककथाएं जीवित रहती हैं। लोककथाओं के एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक यात्रा तब तक ही संभव है जब तक समाज सामूहिक रूप से उसे आगे सुनते, सीखते, बोलते और बढ़ाते रहे। एक तरफ जहाँ लोककथाएं समाज पर निर्भर करती हैं, समाज भी लोककथाओं पर निर्भर करता है। समाज अपनी सामूहिक स्मृति, इतिहास, परंपरा आदि को इन कथाओं में सहेज कर अगली पीढ़ी के लिए छोड़ देता है।

पूर्वोत्तर जैसे वाचिक परंपरा संपन्न क्षेत्र में हर समाज के लिए लोककथाएं जीवन का बेहद महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। इन कथाओं में पूर्वोत्तर के ट्राइबल समुदायों की जीवनदृष्टि, जिज्ञासा, दर्शन, ज्ञान आदि व्यक्त होते हैं।

समाज इन लोककथाओं द्वारा अपने मूल्यों को भी अगली पीढ़ी तक पहुँचाता है। पूर्वोत्तर की लोककथाओं में भी सामाजिक मूल्य, दायित्व, अपेक्षाएं आदि के तत्व दिखते हैं। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वे समाज पर इन विषयों का आरोपण ही कर रहा हो।

समाज द्वारा तय किये गए दायित्वों, आदर्शों और अपेक्षाओं को विभिन्न जेंडर के लोग प्रायः स्वतः निभाने लगते हैं। ऐसा उनके समाजीकरण के कारण होता है। जेंडर के सामाजिक अपेक्षाएं इसलिए बेहद महत्वपूर्ण हो जाते हैं क्योंकि समाज की सुरक्षा के अन्दर रहने के लिए व्यक्ति को समाज के नियमों के अनुसार चलना पड़ता है।

मातृत्व की अवधारणा दुनिया के अधिकाँश समाजों में सबसे बड़ा जेंडर दायित्व लेकर आती है। समाज एक माँ के रूप में एक औरत पर अपेक्षाओं का भारी बोझ डाल

देता है। औरतें अपने व्यक्तिगत पसंद-नापसंद, सुख-चैन और आकाँक्षाओं को छोड़ कर माँ होने के सारे सामाजिक माँगें पूरी करती हैं समाज उन्हें प्रतिष्ठा और सम्मान देता है और जो इसमें असफल होती हैं उन्हें खलनायिका मानता है।

पूर्वोत्तर में सौतेली माँओं के बारे में कई लोककथाएँ मिलती हैं। दुनिया के अधिकांश समाजों की तरह यहाँ भी सौतेली माँ के अत्याचार की कथाएँ बहुत प्रचलित है। लेकिन सगी माँ के द्वारा अपना जेंडर दायित्व न निभाने की कथा भी यहाँ मिलती है। मिज़ो समाज में ऐसी दो कथा का पता चलता है जिसमें माँ अपने बच्चे के प्रति जिम्मेदारी नहीं निभाना चाहती। ऐसी ही एक मिज़ो लोककथा है थालुंगी (Thalungi)।[126] थैलुंगी एक छोटी बच्ची थी जिसे अपनी माँ के करघे के नीचे बैठना बहुत पसंद था। एक दिन वह हमेशा की तरह करघे के नीचे बैठी हुई थी कि तभी एक व्यापारी लोहे के गेंद बेचते हुए उधर आया। थैलुंगी की माँ हमेशा से अपने बेटे के लिए ऐसा कोई गेंद लेना चाहती थी। उसने व्यापारी से कहा,

"मुझे एक गेंद चाहिए, लेकिन मेरे पास पैसे नहीं है। मेरे पास एक तरुण बेटी है, क्या तुम गेंद के बदले उसे ले सकते हो?" उसने "हाँ" कहा। फिर माँ ने कहा "मैं अपनी बेटी थैलुंगी को पानी लेने भेजूंगी जब वह बाहर निकले तब तुम उसे पकड़ सकते हो।"

करघे के अंदर से थैलुंगी यह सब सुन रही थी। उसकी इच्छा थी कि वह जंगल की तरफ भाग जाए। लेकिन जंगल में उसकी जिन्दगी और भी मुश्किल हो जाती। उसके पास कोई और रास्ता नहीं था। वह व्यापारी उसे लेकर चला गया।

---

[126] B Lalthangliana, Culture and folklore of Mizoram, Publication division, New Delhi, 2005, page 319

थैलुंगी का छोटा भाई जब उस गेंद से खेलने लगा तब उसके दोस्तों ने उसे चिढ़ाया कि इस गेंद के लिए उसने अपनी बड़ी बहन को दे दिया। वह अपने घर गया और माँ से पूछा कि क्या ये बात सच है कि इस गेंद के कारण उसने अपनी बहन को खो दिया? उसकी माँ ने बात स्वीकार कर ली। फिर उसने अपनी मां से आज्ञा मांगी कि वह उसे अपनी बहन को ढूंढने की इजाजत दें। उसकी मां ने उसे कुछ समय इंतजार करने को कहा ताकि वह थोड़ा बड़ा हो जाए और अकेले यात्रा करने लायक हो जाए।

अंततः अपनी बहन को ढूंढने की यात्रा पर निकल जाता है। रास्ते में सबसे पहले उसे एक लकड़ी काटने वाला मिलता है, उसने लकड़ी काटने वाले से पूछा कि क्या आप मुझे उस जगह का रास्ता बता सकते हैं जहाँ मेरी बड़ी बहन थैलुंगी मुझे मिल जाए। लकड़ी काटने वाले ने इसके बदले उससे एक दिन के काम की मदद मांगी। लड़का खुशी-खुशी राजी हो गया और उसकी मदद करने लगा। शाम होने तक उसने वह रास्ता बता दिया जहां उसे खेलूंगी मिल सकती थी। आगे बढ़ने पर उसे एक आदमी मिला जो याक के झुंड को लेकर चल रहा था। लड़के ने उनसे रास्ता पूछा और उसने कहा के झुंड को आगे ले जाने में मेरी मदद करो और मेरे साथ चलते चलो मैं उसी दिशा में जा रहा हूँ।

कुछ दिन बीत गए और अंत में वे गांव पहुंच गए। जब वह उस गाँव के एक घर के अंदर घुसा उसे एक बहुत ही सुंदर औरत मिली। यह थैलुंगी थी। दोबारा मिलकर वे दोनों बहुत खुश थे। वे दोनों जब तक जिंदा रहे उस गांव में रहे।

इस कथा में दो स्त्री पात्र हैं, माँ और बेटी। जहाँ माँ बेटे के खिलौने के लिए बेटी को दे देने का निर्णय लेती दिखती है, वहीं बेटी अपनी परिस्थिति के सामने असहाय दिखती

है। लेकिन समाज में इसको सकारात्मक रूप से नहीं लिया गया। बेटे के दोस्त उसे चिढ़ाते हैं। मिज़ो लोककथाओं में पुरुष के द्वारा स्त्री को बचा कर लाने की कई कथा मिलती है।

इस कथा के अध्ययन से एक महत्वपूर्ण बात यह सामने आती है कि आम तौर पर लोककथाओं में सगी-माँ का महिमामंडन होता है और सौतेली माँ बच्चों की जिन्दगी तबाह कर देती है। लेकिन इस कथा की माँ अपनी बेटी के प्रति कोई ख़ास मोह नहीं रखती है। हाँ उसे अपने बेटे से अति मोह जरुर है। बेटे द्वारा यह कहने पर कि वह अपनी बहन को ढूँढने जाएगा, माँ राजी तो हो गई लेकिन उसे तब तक नहीं जाने दिया जब तक कि वह शारीरिक रूप से सक्षम हो जाए। इस माँ में कमियाँ है। माँओं में कमियाँ हो सकती हैं। इस बात को दिखाना किसी समाज की एक बड़ी सफलता है। हमेशा अच्छा होने का भार माँओं को दबाए रखता है। गलत हो सकने का अवकाश सबके पास रहना चाहिए।

समाज में माँ की भूमिका सबसे 'जेंडरड' भूमिकाओं में से है। प्रकृति ने बच्चा पैदा करने की भूमिका स्त्री को दी, किन्तु बच्चे का मल-मूत्र कौन साफ करे इसकी जिम्मेदारी समाज ने तय की। बच्चे के पालन-पोषण की जिम्मेदारी जेंडरड जिम्मेदारी है। जिसकी स्थापना के लिए समाज माँ के महिमामंडन का सहारा लेता है। इसके साथ-साथ अगर स्त्री माँ की भूमिका ठीक से नहीं निभा पाती है तो उसको उतनी ही तीव्रता से लानत भी देता है। समाज और परिवार के सदस्यों के रूप में महिलाओं और पुरुषों ने माँ की आदर्श भूमिका के बारे में जो धारणा बनाई वह बेहद मजबूत है। पितृसत्ता ने महिलाओं की 'कंडिशनिंग' इस तरह से की है कि वे इस भूमिका को निभाने के लिए अपने भविष्य से भी समझौता कर लेती हैं। इस प्रक्रिया में भले ही उनकी व्यक्तिगत तरक्की की सम्भावना

ख़त्म हो जाए, वे अपने दुःख और खीझ को व्यक्त भी नहीं कर पाती हैं। इसके बदले समाज उनका महिमामंडन करता है। जिससे उनको इस भूमिका को जारी रखने का उत्साह प्राप्त होता रहता है।

एक अन्य मिज़ो लोककथा लिआनडोवा और तुआइसिआला (Liandova leh Tuaisiala)[127] ऐसे दो भाइयों की कथा है जिन्हें उनकी माँ ने अपने हाल पर छोड़ कर दूसरी शादी कर ली। लिआनडोवा और तुआइसिआला दो भाई थे। लिआनडोवा थोड़ा बड़ा हो रहा था लेकिन तुआइसिआला अभी बहुत छोटा था। उसके पिता की मृत्यु हो जाती है। कुछ समय बाद उसकी माँ किसी दूसरे आदमी से शादी कर अपने बच्चों और गाँव को छोड़ कर चली जाती है।

लिआनडोवा और तुआइसिआला का कोई और रिश्तेदार नहीं था और वे अभी इतने छोटे थे कि कोई उन्हें काम पर भी नहीं रखता था। उनके पास एक छोटा सा झूम था लेकिन उनके पास पर्याप्त भोजन नहीं था। दोनों की स्थिति इतनी खराब हो गई की एक चावल के दाने के दो टुकड़े करके सुबह खाने पर मजबूर थे। लिआनडोवा अपने भाई को लेकर काम की तलाश में निकला तो लोगों ने सिर्फ उसे ही काम दिया और कहा कि उसका भाई अभी बहुत छोटा है उसे वे काम पर नहीं रख सकते। लिआनडोवा काम करता और खाने के समय पारंपरिक घर के बांस के फर्श के नीचे थोड़ा खाना गिरा दिया करता था, नीचे उसका भाई तुआइसिआला इंतजार करता था और जैसे ही भाई खाना

---

127 Chingbiakmawi, Liandova leh Tuaisiala and the Reality of Traditional Mizo Society: A Study, Mizoram University Journal of Humanities & Social Sciences (A National Refereed Bi-Annual Journal) Kol I Issue 2, Dec 2015

गिराता उसे उठाकर खाने लगता। एक दिन दोनों पकड़े गए। घर के मालिक ने उन्हें यह कह कर भगा दिया कि वह इस काम के लिए सिर्फ एक मुह भर सकते हैं तो नहीं।

कुछ समय बाद दोनों भाई गांव के अन्य लोगों के साथ जंगल शिकार पर गए, इन्हें एक बड़ा सांप दिखा उन्होंने लोगों को बताया और सब ने मिलकर उस सांप का शिकार किया। लेकिन जब मांस बांटने की बारी आई तो उन्होंने इन दोनों भाइयों को एक भी टुकड़ा मांस का नहीं दिया। उन्होंने दोनों भाइयों को सांप की अंतड़ियाँ पकड़ा दी। लेकिन संयोग उन्हें से अंतड़ियों के अंदर बहुत सारे गहने मिले। गाँव वालों के डर से उन्होंने गहनों को छुपा कर रख दिया। कुछ समय बाद गाँव के प्रधान की बेटी तुआइचवंगी (Tuaichawngi) की शादी के लिए लड़के को पसंद करने का समारोह हो रहा था। सभी योग्य युवक इस उम्मीद में वहाँ पहुँचे कि तुआइचवंगी उन्हें पसंद करेगी। लेकिन उसने लिआनडोवा की तरफ ऊँगली दिखाई। प्रधान की नजर में वह एक गरीब और अनाथ लड़का था, उस समय प्रधान के पास शक्ति थी कि अगर कोई साधारण आदमी प्रधान की बेटी से प्रेम करने लगता तो वह उसे मरवा सकता था लेकिन यहाँ स्वयं उसकी बेटी ने साधारण आदमी को पसंद किया था। प्रधान ने गुस्से में कहा कि "तुम्हारे पास बेहतर से बेहतर वर चुनने का मौका था लेकिन तुमने सबसे गरीब को चुना, तुम्हें मेरा आशीर्वाद नहीं मिलेगा।" और उसने अपनी बेटी की बढ़ी हुई ऊँगली काट दी। उसे लगा कि ये गरीब लड़का 'ब्राइड-प्राइस' नहीं दे पाएगा, इसलिए उसने भारी रकम मांगी। लिआनडोवा तुरंत अपने छुपाए हुए गहने ले आया। और दोनों की शादी हो गई तुआइचवंगी अपने बहुमूल्य गहनों को भीड़ में फेंकने लगी और अपने पिता को कहने लगी, "पिताजी, देखिये मेरी

ऊँगली जिसे आपने काट दिया।" फिर वह लिआनडोवा और तुआइसिआला के साथ उनके घर आ गई।

इस कथा की विवेचना करते हुए चिंगबिआकमावी (Chingbiakmawi)[128] ने लिखा है कि देखने में ऐसा लग सकता है कि बच्चों की माँ ने अपना दायित्व नहीं निभाया। लेकिन हमें समझना होगा कि माँ को पता था एक अकेली औरत और दो बच्चों का पेट पालना उस समाज में कितना कठिन होने वाला है। पारंपरिक रूप से अनाथ बच्चों की जिम्मेदारी प्रधान की होती थी। वे प्रधान के यहाँ दास बनकर रहते थे। उसके बदले उन्हें पर्याप्त भोजन मिलता था। अगर प्रधान ने अपनी जिम्मेदारी निभाई होती तो दोनों भाइयों को यूँ एक चावल का दो हिस्सा करके खाने पर मजबूर नहीं होना पड़ता। साथ ही माँ की अपनी भी इच्छा, आकांक्षा रही होगी और उसने उसे कुर्बान नहीं किया। वहीं प्रधान की बेटी की सूझ-बूझ और हिम्मत की भी तारीफ होती है।

"माँ के हाथ का खाना" एक ऐसा ही उदाहरण है जिसकी नृतत्वशास्त्रीय विवेचना आवश्यक है। लगभग हर समाज और संस्कृति में माँ के हाथ के खाने को लोग सबसे अधिक पसंद और याद करते हैं। अधिकाँश मानव सभ्यताएँ जब शिकार और संग्रह (Hunter-gatherer) की जीवन पद्धति को अपनाते हुए आगे बढ़ रहे थे तब स्त्रियाँ भी शिकार पर जाती थीं। आम धरना यह है कि पुरुष ही शिकार करते थे और महिलाऐं घर में रह कर खाना पकती थीं। किन्तु नए अध्ययनों ने इस बात को स्थापित कर दिया है कि

[128] Chingbiakmawi, Liandova leh Tuaisiala and the Reality of Traditional Mizo Society: A Study, Mizoram University Journal of Humanities & Social Sciences (A National Refereed Bi-Annual Journal) Kol I Issue 2, Dec 2015

प्रागैतिहासिक स्त्रियाँ शिकार करने में माहिर थीं।[129] आरंभिक पश्चिमी श्वेत पुरुष नृतत्वशास्त्रियों ने बहुत थोड़े सन्दर्भों के आधार पर यह स्थापित किया कि पुरुष का काम शिकार (Hunting) था और स्त्रियों का काम संग्रह (Gathering) था।[130] यह अकादमिक स्थापना न सिर्फ स्त्री अधिकारों को नुकसान पहुँचाने वाली थी बल्कि इसने स्त्रियों के इतिहास के साथ भी न्याय नहीं किया। स्त्रियाँ बड़े शिकार करने में सक्षम भी थीं और करती भी थीं। लिंग के आधार पर काम के बंटवारे के बारे में जूडिथ के ब्राउन (Judith K। Brown) का कहना है कि शिकार और संग्रह पर आधारित समाजों की स्त्रियों पर विश्व की अधिकाँश स्त्रियों की तरह बच्चों के पालन-पोषण की अतिरिक्त जिम्मेदारी हमेशा रही। ऐसे में उनका घर से बहुत दूर जाना मुश्किल था। उन्हें घर के पास उपलब्ध शिकार या संग्रह के साधनों पर निर्भर होना पड़ता था। लेकिन साथ ही उन्होंने इस बात पर भी इशारा किया कि जैसे आज के पश्चिमी और औधोगिक दुनियाँ में दफ्तर जाने वाली महिलाएँ बच्चों की जिम्मेदारी 'डे-केयर' या अन्य माध्यमों से कम के समय बच्चों की जिम्मेदारी से मुक्त होकर अपने काम पर जाती हैं वैसे ही ट्राइबल समाजों में भी स्त्रियाँ अपने बच्चों को घर के किसी सदस्य या फिर थोड़े बड़े हो गए बच्चों के साथ छोड़ कर शिकार और संग्रह के लिए जाती रही हैं।[131] यहाँ हमें यह समझना जरुरी है कि

---

[129] Vivek Venkataraman, Women were successful big-game hunters, challenging beliefs about ancient gender roles, University of Calgary, https://ucalgary।ca/news/women-were-successful-big-game-hunters-challenging-beliefs-about-ancient-gender-roles

[130] ibid

[131] Judith K। Brown, A Note on the Division of Labor by Sex, American Anthropologist , Oct।, 1970, New Series, Vol। 72, No। 5 (Oct।, 1970),Wiley, pp। 1073-1078

ट्राइबल स्त्रियाँ जिन वस्तुओं का संग्रह करती हैं उसके लिए बहुत अधिक अनुभव और ज्ञान की जरुरत होती है। चाहे वह खाने योग्य फल-सब्जी आदि हो या फिर जड़ी-बूटी। बिना समृद्ध इंडीजीनियस-ज्ञान (Indigenous Knowlege) परंपरा के कोई समाज सतत पोषणीय विकास नहीं कर सकता। किस चीज को कितना इस्तेमाल करना है कि वह आगे भी उपलब्ध रहे, किसे कब लेना है कब नहीं यह सब एक गहरे पारंपरिक ज्ञान से प्राप्त होता है। अधिकांश ट्राइबल समाजों में यह ज्ञान औरतों के पास रही। ऐसे में यह कहना कि पुरुषों द्वारा किया गया काम महत्वपूर्ण है और स्त्रियों द्वारा किया गया काम कम महत्वपूर्ण यह उचित नहीं लगता है। हर समाज को इस ज्ञान के महत्व के बारे में पता होता है। पुरुषों के शिकार से खाली हाथ लौटने पर यह स्त्रियाँ ही थीं जो फिर भी भोजन का प्रबंध कर लेती थीं, ऐसे में परिवार और समाज में इसका महत्व न हो यह संभव नहीं है।

पूर्वोत्तर की लोककथाओं में सौतेली माँ के अत्याचार के कई सन्दर्भ मिलते हैं। बेचारा लड़का (The miserable boy)[132] मिज़ो लोककथा में एक पुरुष और उसकी पत्नी ने सहमती बनाई कि अपने वैवाहिक जीवन में वे जीवनचर्या सम्बन्धी किसी काम के लिए शिकायत के एक शब्द भी नहीं बोलेंगे चाहे काम कितना भी मुश्किल हो। एक दिन वे कुछ भारी सामान उठा कर ला रहे थे। पत्नी ने कहा कि यह वजन उसके लिए बहुत भारी है। आदमी ने उसे शिकायत न करने की सहमती को तोड़ने के कारण उसे नदी में धक्का दे दिया। उनका एक बेटा था। जब बेटे ने अपनी माँ के बारे में पूछा तो पिता ने सीधा जवाब नहीं दिया। उसने दूसरी शादी कर ली। सौतेली माँ लड़के के प्रति बहुत

---

[132] B Lalthangliana, Culture and folklore of Mizoram, Publication division, New Delhi, 2005, page 332

निर्दयी थी। उसे कभी पेट भर खाना भी नहीं दिया जाता था। उसकी मृत माँ मीठे फूलों वाले एक पेड़ के रूप मैं उग आई। बच्चा उन फूलों को खाया करता था और सौतेली माँ द्वारा भूखा रखने के बावजूद वह स्वस्थ और मोटा हो रहा था।

सौतेली माँ ने पड़ताल की तो पता चला कि लड़का सारी पौष्टिकता घर के पास उगे नए पेड़ से पा रहा है। उसने पेड़ को कटवा दिया। पेड़ ने बच्चे को कहा कि वह थोड़ी सी लकड़ी लेकर नदी में डाल दे। लड़के ने वही किया और वह लकड़ी एक बड़ी मछली में बदल गई। उसके बाद लड़का रोज नदी के पास जाता और बड़ी मछली उसे छोटी मछलियाँ ला कर देती।

सौतेली माँ को इसके बारे में भी पता चल गया। उसने नदी में जहरीले पेड़ के जड़ को नदी में डाल कर मछली को मारने की योजना बनाई। लड़के ने बड़ी मछली को अपनी सौतेली माँ की योजना बताई और उसे कहा कि जहर से बचने के लिए वह उलटी दिशा में चले जाए। जब वह चिल्लाए ‘‘उपरी धार’ तो आप नीचे आ जाना और इसी तरह से ‘‘निचली धार’ चिल्लाने पर ऊपर चले जाना। एस आकारकी बड़ी मछली जहर से बाख गई। सौतेली माँ ने बच्चे को बहुत पीटा। जब बच्चा बहुत जोर-जोर से रो रहा था तब बड़ी मछली आई और उसने अपनी पूंछ से बच्चे को नदी में समा लिया। बच्चा भी मछली बन गया।

इस लोककथा में मातृत्व को केंद्र में रखा गया है। जहाँ एक माँ मरने के बाद भी अपने बेटे के लिए उपस्थित रहती है और उसे हर मुश्किल से निकालती है। इस कथा में ‘दुष्ट सौतेली माँ’ की अवधारणा को दोहराया गया है, किन्तु पिता पूरे परिदृश्य से गायब

रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुत्र के प्रति उसकी कोई जिम्मेदारी नहीं है अथवा वह उसके चिंता का विषय नहीं है। सौतेली माँ वाली कथाओं में पिता अक्सर अनुपस्थित ही रहता है। संभवतः समाज ऐसे पिताओं को सचेत करने के उद्देश्य से ऐसी कथाओं का निर्माण करता हो कि अगर वे अपने बच्चों की स्थिति से अनभिज्ञ रहेंगे तो उनके बच्चों के साथ बुरा हो सकता है।

सौतेली माँ के द्वारा किये गये अत्याचार और पिता के उदासीनता के बारे में एक आओ नागा लोककथा बेहद रोचक है। इस कथा[133] में भी एक छोटी बच्ची की माँ की मृत्यु हो जाती है और पिता दूसरी शादी कर लेता है। उसकी सौतेली माँ भी उसके साथ अत्याचार करती है। बच्ची को अपने ही घर में नौकर की तरह रखा जाता है। लेकिन वह बच्ची बड़ी होकर बेहद सुन्दर और घर के काम-काज में निपुण लड़की बनी। एक दिन पड़ोस के गाँव का एक अमीर पुरुष उस गाँव में आया तो उसकी नज़र लड़की पर पड़ी। उसकी सुन्दरता और नम्रता को देख कर वह बहुत प्रभावित हुआ और शादी का प्रस्ताव लेकर आया। लड़की ने पिता से पूछा तो वह ख़ुशी-ख़ुशी तैयार हो गया। लड़की एक अमीर आदमी की पत्नी बन कर अच्छी जिन्दगी जीने लगी। लेकिन यह कथा अन्य “और वे ख़ुशी-ख़ुशी रहने लगे” वाली कथाओं की तरह यहीं नहीं ख़त्म होती। एक बार पिता के गाँव में भयानक सूखा पड़ा और उनकी हालत इतनी ख़राब हो गई कि भूखे रहने की नौबत आ गई। पिता ने फैसला किया कि वे अपनी बेटी के यहाँ जाएँगे। पिता और सौतेली माँ बेटी के यहाँ जाते हैं। वहां बेटी और दामाद ने उनका बहुत अच्छे से स्वागत किया।

---

133 Temsula Ao, The Ao-Naga Oral Tradition, Heritage Publication, Dimapur, 1999, page 163

उन्होंने उन्हें तब तक वहीं रहने के लिए कहा जब तक उनकी ये स्थिति ठीक न हो जाए। बेटी ने अपनी सौतेली माँ के साथ भी बहुत अच्छा व्यवहार किया, मानो उसके साथ माँ ने कभी कुछ बुरा किया ही न हो। लेकिन बेटी अपनी सौतेली माँ को अपने किये की सजा देने की योजना बना रही थी। कुछ समय बाद जब परिस्थिति ठीक हुई और वे वापस अपने घर जाने को तैयार हुए, बेटी ने उनके साथ बहुत सारा सामान दिया और एक सूअर का भोज दिया। उसने दो टोकरी में घर वापस ले जाने के लिए मांस भी दिए। पिता के टोकरी में उसने हड्‌डी वाले टुकड़े दिए और सौतेली माँ की टोकरी में मुलायम मांस के टुकड़े। जब वे वापस जाने के लिए निकल गए उसके थोड़ी देर के बाद बेटी ने उनके पीछे खतरनाक शिकारी कुत्ते छोड़ दिए। दोनों पति-पत्नी जान बचाने के लिए भागने लगे। जब कुत्ते नजदीक पहुँच गए तब उन्होंने अपने टोकरी से मांस फेंकना शुरू किया। पिता की टोकरी में हड्‌डी वाले टुकड़े थे और उसे खाने में कुत्तों को समय लग रहा था, और इसी दौरान वह दूर भागने में सफल रहे, वहीं सौतेली माँ की टोकरी में मुलायम मांस था जिसे कुत्ते एक बार में ही निगल रहे थे और उसके नजदीक पहुँच गए। और अंतत उसे पकड़ लिया और उसपर टूट पड़े। इस तरह से सौतेली माँ को कुत्तों ने मार डाला और पिता अकेले अपने घर पहुँचा। उसे इस बात का अहसास हो गया कि उसकी बेटी ने अपने ऊपर किये गए अत्याचार का बदला लिया है और उसकी स्थिति के प्रति पिता के उदासीनता के उदासीनता का फल भी उसे मिला है और अब वह अकेले रहने पर मजबूर हो गया।

यह कथा सौतेली माँ वाले सन्दर्भ वाली अन्य कथाओं से अलग है और एक ऐसे परिणाम पर पहुँचती है जहाँ जिसने गलत किया उसे भी सजा मिलती है और जो गलत के समय उदासीन था उसे भी सबक मिलती है। साथ ही शक्ति संबंध को भी उजागर करती है।

जब सौतेली माँ के पास शक्ति होती है वह अत्याचार करने से नहीं हिचकती, लड़की का पति के धन से सशक्तिकरण होता है लेकिन यहाँ उसकी सूझबूझ और अपने लिए न्याय पाने के प्रति प्रतिबद्धता अधिक महत्वपूर्ण है।

पूर्वोत्तर की लोककथाओं में अनाथ बच्चों, सौतेली माँ की कथाओं के कई सन्दर्भ में आते हैं। कहीं अंत सुखात्मक है तो कहीं बेहद करुण। एक पक्षी के बारे में आओ की एक अन्य लोककथा है, लोग मानते हैं कि ये पक्षी एक गरीब अनाथ बच्ची थी। इस पक्षी को आओ की चंग्की (Changki) बोली में इंग्नंग (Ingnang) बुलाते हैं। जब यह पक्षी बोलती है तो लगता है कि वह रोते हुए एक मुट्ठी पका हुआ चावल मांग रही है। जब बच्ची अपनी सौतेली माँ से खाने के लिए एक मुट्ठी पका हुआ चावल भी मांगती तो वह उसे करछी से मारती थी। दर्द, भूख और दुःख से बच्ची ऊपर उछली और पक्षी बन पास के पेड़ पर उड़ कर चली गई और जानिंग-जानिंग (janing-janing) बोल कर रोने लगी। जो धीरे-धीरे बदल कर इंग्नाग बन गया। आज भी एक पक्षी है जो ऐसी आवाज में बोलती है और लोग मानते हैं कि यह उस बच्ची की पुकार है।

5.2 लोककथाओं में अभिव्यक्त संस्कृति एवं जेंडर

जेंडर संस्कृति की ही देन है। इसलिए किसी समाज के सांस्कृतिक परंपरा में जेंडर के तत्वों का मिलना स्वाभाविक है।

प्रोफेसर तेमसुला आओ कहती हैं[134] कि और समाज में औरतों की स्थिति बहुत रोचक है। वैसे तो औरतों की भूमिका महत्वपूर्ण है किंतु वे कुछ मामलों में पुरुषों के अधीन ही हैं।

आओ समाज की सामाजिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक है इसलिए औरतों की भूमिका द्वितीयक हो जाती है। उदाहरण के तौर पर वे पैतृक संपत्ति प्राप्त नहीं कर सकती हैं, न ही वे गांव के प्रशासनिक गतिविधियों में प्रमुख भूमिका निभा सकती हैं। पारंपरिक आओ समाज मानता है कि कुछ चीजों पर सिर्फ पुरुषों का विशेषाधिकार है।

लेकिन इसे ऐसे कभी नहीं देखा गया कि औरतों का समाज में हीन दर्जा है। उनका कार्यक्षेत्र घर, बच्चे और उनसे जुड़ी हुए गतिविधियाँ है। खेतों में भी औरतों की शारीरिक क्षमता के हिसाब से शारीरिक श्रम का बंटवारा क्या होता है।

दूसरी तरफ, आओ समाज की सामाजिक रीति-रिवाज ऐसे हैं कि एक बेटी, बहन, पत्नी और मां के रूप में औरतों की व्यक्तिगत गरिमा और अधिकार का हनन नहीं किया जा सकता। उदाहरण के तौर पर पति और उसके रिश्तेदारों द्वारा किसी औरत के साथ खराब व्यवहार नहीं किया जा सकता क्योंकि उन्हें पता है कि औरतों का परिवार

---

[134] Temsula Ao, The Ao-Naga Oral Tradition, Heritage Publication, Dimapur, 1999, page 162

हमेशा उसके साथ खड़ा रहेगा। और समाज में मामा की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। ऐसे कई अनुष्ठान और समारोह हैं जो बिना मामा की उपस्थिति के पूरे हो ही नहीं सकते। यह इस बात की तरफ इशारा करता है कि भले ही शादी के द्वारा स्त्री को दूसरे को दे दिया गया है किन्तु वह हमेशा अपने परिवार के द्वारा संरक्षित है। एक विधवा स्त्री का भी ख्याल मृत पति का परिवार तब तक रखता है जब तक वह दूसरी शादी न कर ले।

समाज की परंपरा और विश्वास की झलक लोककथाओं में मिलती हैं। लोककथाओं की एक बड़ी शक्ति यह बताना है कि किसी सामाजिक विश्वास की शुरुआत कहाँ हुई। समाज में उस सूचना और ज्ञान की स्थापना लोककथाओं के द्वारा की जाती है।

ऐसी ही एक लोककथा है 'कोइओ (Koio) को नाम कैसे मिला'[135] लोथा समुदाय का कोइओ गाँव जो कोखा पहाड़ के पास स्थित है, एक समय में आओ नागा समुदाय के लोग वहां बसा करते थे। आओ इस जगह को ख्युयु (Khuyu) अर्थात ''सामान रखा गया' भी बुलाते हैं। इसके पीछे जो कथा प्रचलित है उसके अनुसार, एक समय की बात है। एक आदमी अपनी पत्नी और इकलौती बेटी के साथ रहता था। बच्ची के माँ की मृत्यु हो गई। पिता ने दूसरी शादी कर ली। सौतेली माँ बच्ची के प्रति बहुत निर्दयी थी। एक दिन जब उसका पति काम के सिलसिले में बाहर गया था उसने मिर्च से भरी हुई बहुत ही मसालेदार सब्जी बनाई। बच्चों का यह सहज स्वभाव कि जिस काम को मना किया जाए, उसे वे और अधिक करते हैं, को जानते हुए उसने बच्ची को जानबूझ कर कहा कि वह सब्जी को न छुए। बच्ची को घर में अकेली छोड़ सौतेली माँ बहार जाने

[135] G।K। Ghosh (edit) Fables and Folktales of Nagaland, Firma KLM Private Limited, Calcutta, 1997, page 88

लगी और उससे कहा कि वह चावल लेने बाहर जा रही है। लेकिन वास्तव में वह बाहर नहीं गई और घर के बाहर खड़ी होकर बांस के दिवार से अन्दर झाँकने लगी ताकि वह देख सके कि बच्ची क्या शरारत कर रही है। जिज्ञासु बच्ची ने अपनी ऊँगली बर्तन में डाल दी और सब्जी को चख लिया। इतना देखते ही सौतेली माँ चीखते हुए अन्दर घुस आई और बोली "कौन खाएगा तुम्हारा जूठा, अब तुमको ही यह पूरा ख़त्म करना होगा।" और उसने बेचारी भयभीत बच्ची को जबरदस्ती वह बेहद तीखी सब्जी को पूरा खाने पर विवश कर दिया। उसने बच्ची को पानी भी नहीं दिया। जिसके फलस्वरूप बच्ची तड़प-तड़प कर मर गई। बच्ची के मरने के बाद सौतेली माँ ने एक सूअर की बलि दी, कि उसका पति इस सामाजिक परंपरा के पालन न होने से क्रोधित न हो जाए। उसे लगा कि मृत्यु के असली कारण को वह छुपा लेगी।

जिस दिन आदमी वापस लौट रहा था, रास्ते में जहाँ आज कोइको गाँव स्थित है, के पास रास्ते में उसे एक डलिया मिला उसमे एक बर्तन भी रखा था, उसे देखते ही वह पहचान गया कि यह उसकी बेटी का है। साथ ही एक बड़े मरे हुए सूअर जिसके गले पर एक सफ़ेद निशान था, को देख कर वह पहचान गया कि यह भी उसी का है। वह सोच में पड़ गया कि इसका क्या मतलब हो सकता है। वह अपने घर की तरफ भागा जहाँ पहुच के उसे पता चला कि उसकी बेटी की मृत्यु हो चुकी है। फिर वह समझ गया की टोकरी, बर्तन और सूअर को उसकी बेटी की आत्मा ने ही वोखा पहाड़ के रास्ते में छोड़ा होगा। उसकी पत्नी ने धाराप्रवाह कहना शुरू कर दिया कि कैसे उसने हर संभव प्रयास किया कि बच्ची को बचाया जा सके लेकिन वह गंभीर रूप से बीमार पड़ गई और अंततः इसकी वजह से उसकी मौत हो गई। अपने विचारों को अपने मन में रखते हुए पति ने ऐसा जताया कि

उसने विश्वास कर लिया है। शव विधिवत जला दिया गया और अवशेष को छज्जे पर रखा गया। जब सब कुछ पूरा हो गया, वह जंगल जाने लगा। उसने अपनी पत्नी से कहा कि जब वह लौटने लगे तो वह अवश्य उससे मिले और साथ में 'मधु' (चावल की शराब) के साथ आए। पत्नी ने यह ठीक से याद रखा था। लेकिन जब उसका पति उसके पास आया, वह एक सांप में बदल गया और उसने कहा कि, "मैं तुम्हें खा जाऊंगा। तुमने मेरी बेटी को मारा है।" और इसके साथ ही दुष्ट सौतेली माँ का अंत हुआ। चूँकि बच्ची की आत्मा ने सामान को खुयु में रखा था इसके ऊपर उसका नाम पड़ा।

उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत शोध-प्रबंध में पूर्वोत्तर की आओ, आदी, खासी और मिज़ो लोककथाओं में 'जेंडर' का अध्ययन किया गया है। इस शोध कार्य का मुख्य उद्देश्य जेंडर-विमर्श के विविध पक्षों के परिप्रेक्ष्य में पूर्वोत्तर भारत की लोककथाओं का अध्ययन था। इस शोध कार्य के मुख्य शोध-प्रश्न पूर्वोत्तर की लोककथाओं में अभिव्यक्त स्त्री-पुरुष सत्ता-संबंध, जेंडर दायित्व, निर्णय की प्रक्रिया एवं जेंडर के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों की स्थिति से जुड़े हुए थे। इस शोध कार्य के द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जैसे किसी समाज में न तो सबकुछ अच्छा या सबकुछ बुरा ही होता है वैसे ही लोककथाओं में भी जेंडर की भूमिका न तो पूरी तरह से किसी जेंडर के पक्ष में या पूरी तरह से विपक्ष में अभिव्यक्त हो रही है। पूर्वोत्तर की लोककथाओं में जहाँ एक तरफ बेहद मजबूत महिलाएं समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती दिख सकती हैं वहीं सौम्य पुरुषों के व्यवहार को प्रोत्साहित करने वाली कथाएँ भी प्रचलित हैं। जहाँ एक तरफ बेहद क्रूर सौतेली माँओं की कथाओं की कोई कमी नहीं दिखती वहीं कहीं-कहीं पिताओं की उदासीनता और क्रूरता को भी यहाँ की लोककथाएँ उजागर कर रही हैं। इन लोककथाओं में औरत और मर्द दोनों जेंडर के लोग किसी न किसी रूप में महत्वपूर्ण भूमिकाओं में दिख सकते हैं। लोककथाओं के माध्यम से सामान्यतः ऐसा प्रतीत नहीं होता कि इन समाजों में जेंडर-व्यवस्था की प्रचलित वर्जनाओं का शब्दशः पालन लोक कर रहा है। कई लोककथाएँ ऐसी हैं जो नीति अथवा मनोरंजन से सम्बंधित हैं, इनका जेंडर विमर्श से सम्बन्ध अध्ययन संभव नहीं है। समग्र रूप से देखने पर इन लोककथाओं में स्त्री और पुरुष दोनों जेंडर की सकारात्मक एवं नकारात्मक अभिवक्ति देखने को मिलती है। यह भी उल्लेखनीय है कि पूर्वोत्तर के चार

अध्ययित ट्राइबल समुदायों आओ, आदी, खासी और मिज़ो लोककथाओं में औरत एवं मर्द के इतर अन्य जेंडर के लोगों की अभिवक्ति का पता नहीं चल पाया। संभव है कि शोध कार्य की समय सीमा में हम अन्य जेंडर संबंधी लोककथाओं तक न पहुँच सके हों, किन्तु बहुत प्रयास के बाद भी इनके संबंध में किसी लोककथा का न मिलना एवं प्राप्त लोककथाओं में उनकी अनुपस्थिति समाज में उनकी स्थिति के बारे में प्रश्न उत्पन्न तो करता है।

भारत एक विविधतापूर्ण देश है। विविधता किसी भूमि विशेष के समृद्धि का प्रतीक मानी जाती है। किन्तु एक बड़ी आबादी में संवेदनशीलता और समझदारी के अभाव में यह सांस्कृतिक विविधता कई बार अप्रिय घटनाओं की शिकार बनती है। इसका एक बड़ा कारण अपने देश के विभिन्न क्षेत्रों, संस्कृतियों एवं लोगों के बारे में अनभिज्ञ रहना भी कहा जा सकता है। लोगों को देश के अन्य भागों की भौगोलिक स्थिति के बारे में नहीं पता रहता है। वहाँ के लोग कैसे रहते हैं, कैसे दिखते हैं, क्या खाते हैं, कैसा बोलते हैं, अपने साथी नागरिक के बारे में ऐसी मूलभूत जानकारी का आभाव दिखता है। आए दिन पूर्वोत्तर के लोगों पर होने वाली नस्लीय हिंसा की घटनाएँ इस देश की विविधता पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देती है। अपने विस्तृत भूभाग में भारत अनेक संस्कृतियों को समाहित किये हुए है। अफ़सोस की बात यह है कि एक बड़ी आबादी इन संस्कृतियों की भौगोलिक स्थिति तक को नहीं जानती है। ऐसी अनभिज्ञता और उससे उपजे समस्याओं का शिकार हमारा शोध-क्षेत्र पूर्वोत्तर भारत भी है। इस शोध कार्य का एक उद्देश्य पूर्वोत्तर के कुछ समाजों की लोककथाओं के अध्ययन के द्वारा शेष भारत में व्याप्त इस सांस्कृतिक अनभिज्ञता को दूर करना है।

इस शोध कार्य के आरंभ में हमारी शोध-दृष्टि जेंडर-विमर्श के बहुप्रचलित शोध-प्रविधि से प्रभावित थी जिसका आधार पश्चिमी एवं मुख्यधारा नारीवाद है। किन्तु पूर्वोत्तर भारत के ट्राइबल समुदायों की लोककथाओं के जेंडर के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन के दौरान 'इंडीजीनियस फेमिनिज्म' अर्थात आदिवासी नारीवाद की आवश्यकता और महत्व से अवगत होने के बाद इस शोध कार्य में 'इंडीजीनियस शोध-प्रविधि' को समाहित करना आवश्यक हो गया। यह दृष्टि इस बात को स्थापित करती है कि किसी ट्राइबल-आदिवासी समाज के अध्ययन के दौरान बाहरी विचारधारा से संचालित शोध-दृष्टी को इनपर आरोपित करना अनुचित है। इन समाजों के अध्ययन के दौरान हमें यह देखना चाहिए कि विभिन्न विषयों पर इन समाजों का अपना मत क्या है। वे अपने आपको किस रूप में देखते हैं। किसी परंपरा और विश्वास के मूल में उनकी भावना क्या है। किसी विषय के बारे में समाज का अपना 'नेरेटिव' क्या है। उनकी जीवन-दृष्टि क्या है।

इस शोध-प्रबंध को पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है। **'अध्याय 1. विषय परिचय'** में हमने शोध विषय के विभिन्न पक्षों के परिचय के साथ-साथ उनका सैद्धांतिक विवेचन किया है।

पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदाय के लोग अपने आपको 'ट्राइबल' शब्द से संबोधित करते हैं। वे सामान्यतः अपने आपको आदिवासी नहीं बुलाते हैं। वैश्विक अकादमिक विमर्शों में 'ट्राइबल' शब्द के उपयोग के बारे में विवाद रहता है किन्तु भारत में 'ट्राइब' शब्द को संविधान में मान्यता देते हुए हुए आदिवासी समुदायों के लिए 'शेड्यूल्ड ट्राइब' (अनुसूचित जनजाति) स्वीकार किया गया है। अतः पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों के सम्बन्ध में ट्राइब/ट्राइबल शब्द का उपयोग ही उचित होगा।

पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों ने लम्बे समय तक उपनिवेशी ताकतों का विरोध किया। पूर्वोत्तर में उपनिवेशी सत्ता का आगमन मिशनरी धर्म प्रचारकों के साथ हुआ। इनका पहला उद्देश्य पूर्वोत्तर के लोगों में ईसाई धर्म का प्रचार था। उन्होंने जन-कल्याण के कुछ अच्छे काम भी किये, किन्तु इसके बदले यहाँ के लोगों की पारंपरिक जीवन-पद्धति को निश्चित रूप से प्रभावित किया। जैसा कि उपनिवेशी ताकते हमेशा करती हैं, अंग्रेजी सत्ता और मिशनरी अधिकारियों ने पूर्वोत्तर के लोगों की परंपरा को असभ्य बता कर

उसके कई पक्षों पर प्रतिबंध लगाया और अपने रंग में रंगने का पूरा प्रयास किया। लेकिन पूर्वोत्तर के ट्राइबल समुदायों के लोग अपनी परम्पराओं से बहुत करीब रहे। भले ही उनके धार्मिक विश्वास को बड़े स्तर पर प्रभावित किया गया हो लेकिन उन्होंने अपनी जनजातीय अस्मिता को नहीं छोड़ा। वे अपनी अस्मिता और परंपरा से गहराई से जुड़े रहे हैं। पूर्वोत्तर भारत की लोककथाएँ पूर्वोत्तर की सांस्कृतिक विरासत और पारंपरिक दस्तावेज की तरह हैं। पूर्वोत्तर के ट्राइबल समुदायों की अस्मिता से उनकी लोककथाओं गहराई से जुड़ी हुई हैं।

दुनिया के अधिकांश समाजों की तरह पूर्वोत्तर के ट्राइबल समुदायों की सामाजिक व्यवस्था भी मुख्य रूप से पुरुषों के नियंत्रण में हैं। अध्ययित समुदायों में से आओ, आदी और मिज़ो समाज की सामाजिक व्यवस्था पितृसत्तात्मक है। वहीं खासी समाज मातृवंशीय सामाजिक व्यवस्था का पालन करता है। इन समुदायों में पारंपरिक प्रथागत-विधि 'कस्टमरी लॉ' का पालन किया जाता है। ये कानून वाचिक परंपरा पर आधारित है, इनको कूटबद्ध नहीं किया गया है। इन समाजों में पारंपरिक रूप से सामाजिक-राजनीतिक फैसलें लेने का अधिकार पुरुषों के पास है। ऐसे में महिलाओं के सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकार सीमित हो जाते हैं। आओ, आदी और मिज़ो समाज में पैतृक संपत्ति के अधिकार के मामले में भी स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। खासी समाज में वंश माँ के नाम पर चलता है और शादी के बाद महिलाएँ अपना घर छोड़ कर नहीं जाती हैं। खासी समाज में संपत्ति स्त्रियों के देखरेख में होती है। मातृक संपत्ति की जिम्मेदारी सबसे छोटी बेटी को मिलती है, किन्तु वे मातृक संपत्ति को अपनी इच्छा से बेच नहीं सकती हैं। ये फैसले बड़े मामा या पिता के पास ही होता है। हाल के वर्षों में महिलाओं के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों की मांग उठने लगी हैं। एक साक्षात्कार में प्रो. तेम्सुला आओ ने शोधार्थी को बताया कि नागालैंड में महिलाओं ने संगठित हो कर मांग उठाई कि उन्हें कम से कम पिता की अर्जित संपत्ति का अधिकार महिलाओं को भी मिले, उनके अनुसार बड़ी संख्या में पुरुष आगे आये और उन्होंने अपनी बेटियों को अपनी अर्जित संपत्ति से हिस्सा देने की पहल की, किन्तु उसी समय नागालैंड के निकाय चुनाओं में महिलाओं को आरक्षण देने की बात उठी और बड़ी संख्या में पुरुष इसके

खिलाफ हो गए और महिलाओं के कुछ अधिकारों को सुनिश्चित करने की पहल पीछे हो गई। किन्तु पूर्वोत्तर में अकादमिक जगत, लेखन, कला और व्यापार में महिलाएँ बेहद मजबूती से आगे बढ़ रही हैं। लेखन जैसे क्षेत्रों में तो महिलाएँ ही प्रतिनिधित्व कर रही हैं।

आदी समुदाय में पारंपरिक रूप से पुरुषों द्वारा बहुविवाह (Polygamy) का प्रचाल रहा है। आज भी कुछ पुरुष दूसरी शादी कर लेते हैं। ऐसी शादियों से महिलाओं को परेशानी होती है, पिछले कुछ समय से अरुणाचल प्रदेश में महिला संगठनों ने बहुविवाह के खिलाफ आवाज़ तेज़ कर दी हैं।

ऐसी सामाजिक मुद्दों का समाधान समाज के अन्दर से ही आनी चाहिए। बाहरी दखल और दवाब के द्वारा ट्राइबल समुदायों में सामाजिक सुधार की नीति अनुचित है। ये उपनिवेशी हमलों की तरह समाज अपने अन्दर आपसी संघर्ष अथवा सहमती से जो परिवर्तन लाएगा वही उचित होगा।

सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत बेहद समृद्ध है। यहाँ आदिवासी एवं गैर-आदिवासी दोनों समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा देखने को मिलती है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों का जीवन पीढ़ियों में विकसित लोकसंस्कृति द्वारा संचालित होता है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों पर पड़ने वाले तमाम बाहरी प्रभावों के बावजूद इनकी लोकसंस्कृति के मुख्य तत्व आज भी जीवन और व्यवहार से जुड़े हुए हैं। लोक जीवन पर लोककथाओं और मिथकों का गहरा प्रभाव है। ये लोक कथाएँ पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों के इतिहास, परंपरा, रीति-रिवाज, मूल्य और अस्मिता के वाहक हैं।

'अध्याय 2. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में स्त्री-पुरुष 'सत्ता-संबंध' (Power Relation)' में हमने पूर्वोत्तर की लोककथाओं में सत्ता-संबंध की अभिव्यक्ति का अध्ययन किया है। मनुष्य द्वारा विकसित समाज की अवधारणा और व्यवस्था के केंद्र में कुछ सत्ताएँ हैं, जिनके द्वारा समाज नियंत्रित होता आया है। ये सत्ताएँ अमूमन किसी

समुदाय, क्षेत्र अथवा लिंग के अधीन होती हैं। दूसरों के आचरण को अपने लक्ष्य के अनुसार प्रभावित करने की क्षमता को शक्ति कहते हैं। मानव सभ्यता के विकास के क्रम में कुछ समाज, क्षेत्र और विशेष रूप से पुरुष लिंग ने सत्ता पर कब्ज़ा कर लिया। सत्ता के असंतुलित बंटवारे ने समाज के अधिकाँश लोगों को हाशिये पर धकेल दिया। ऐतिहासिक रूप से स्त्रियों के साथ यही हुआ। स्त्री के अधिकारों के दमन की लम्बी प्रक्रिया ने उन्हें समाज में पीछे धकेल दिया है। विभिन्न स्तरों पर परिवार और समाज द्वारा स्त्री पर थोपे गए नियंत्रण ने उनके विकास की प्रक्रिया को बाधित किया है। उनके व्यक्तित्व निर्माण पर पुरुष वर्चस्व को बरकरार रखने वाले सामाजिक मूल्यों का प्रभावी नियंत्रण स्थापित कर दिया गया है। पूर्वोत्तर के समाजों में स्त्रियाँ पुरुषों पर आर्थिक रूप से बहुत निर्भर हो ऐसा नहीं लगता है क्योंकि कृषि एवं वाणिज्य में अक्सर स्त्री-पुरुष दोनों की भागीदारी दिखती है।

सत्ता-संबंध का अर्थ है एक व्यक्ति या समूह के पास दूसरे व्यक्ति अथवा समूह पर समाज द्वारा निर्देशित शक्ति का आधिपत्य, जिससे वह अन्य व्यक्तियों से अपनी अपेक्षा के अनुरूप व्यवहार को थोप कर अथवा सूक्ष्मता से करवाने में सफल होते हैं।

ऐसा कोई समाज नहीं जहाँ सत्ता न हो। जेंडर और सत्ता का गहरा रिश्ता है। समाज की तरह परिवार में भी सत्ता का केन्द्रीकरण होता है। किसी के लिए आर्थिक फैसले लेने की शक्ति, विवाह, भोजन, अवागमन अथवा 'मोबिलिटी' पर निगरानी आदि सत्ता सम्बन्ध के द्वारा तय होती है।

पूर्वोत्तर की लोककथाओं में सत्ता के तत्त्व कहीं परिवार के स्तर पर दिखता है तो कहीं समाज के स्तर पर। कुछ कथाएँ राजसत्ता के परिप्रेक्ष्य में जेंडर के मुद्दों को अभिव्यक्त

करती हैं। किन्तु इन कथाओं में जनता का 'नैरेटिव' स्त्री एवं प्रेम के पक्ष में है। कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं जहाँ जेंडर की सत्ता सामाजिक-आर्थिक स्थिति से अधिक ताकतवर भी दिखी है। बच्चों के विवाह पर माता-पिता के नियंत्रण की कथाएँ काफी रोचक पक्ष प्रस्तुत करती है। यूँ तो अधिकांश कथाओं में ऐसा कोई बंधन नहीं दीखता लेकिन जिन कथाओं में बंधन दिखते हैं उनमें ऐसा नहीं है कि बेटियों पर अधिक दवाब और बेटों पर कम। ऐसी जितनी भी कथाएँ मिलीं उनमें नियंत्रण के मामले में जेंडर के आधार पर भेदभाव प्रायः नहीं मिलता। इन लोककथाओं में वहां की प्रथागत-विधि की अभिव्यक्ति भी कहीं-कहीं दिखती है।

'अध्याय 3. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में 'जेंडर-दायित्व' (Gender Role)' में हमने आओ, आदी, खासी और मिज़ो लोककथाओं में जेंडर-दायित्व का अध्ययन किया है। समाज की संरचना को गहराई से समझना और स्त्री के अधिकारों के अतिक्रमण की प्रक्रिया के मूल की पहचान करना स्त्री विमर्श के लिए बहुत महत्वपूर्ण था। पितृसत्ता की पहचान करने से यह पता चल गया कि इतिहास के क्रम में एक समय आया जब पुरुषों ने स्त्रियों के ऊपर नियंत्रण हासिल कर लिया और समाज के केंद्र में अपनी सत्ता और स्वार्थ को स्थापित कर दिया। उन्होंने ऐसे नियम थोपे जो यह सुनिश्चित कर कि हजारों साल तक पुरुषों की सत्ता बरकरार रहे। पुरुषों ने जिन कार्यों को अपने लिए चुना उन्हें समाज में अधिक महत्व दिलवाया। स्त्रियों एवं अन्य जेंडर के लोगों के लिए सामाजिक महत्व की बहुत कम संभावनाएं छोड़ी। स्त्री विमर्श ने पितृसत्ता के साथ-साथ 'जेंडर' की अवधारणा को भी उजागर कर दिया। इसमें यह साबित किया गया कि प्रकृति ने 'सेक्स' (लिंग) बनाया और संस्कृति ने 'जेंडर'। अर्थात प्रकृति ने विभिन्न लिंग के जीव का

निर्माण किया। लिंग सम्बन्धी विशेषता उनकी अपनी थी। अगर हम दो लिंग, पुरुष और स्त्री की बात करें तो प्रकृति ने इनमें से किसी को कम या अधिक महत्व नहीं दिया है। लेकिन जब संस्कृति इसी लिंग के आधार पर 'जेंडर' का निर्धारण करती है, वहां से पुरुष वर्चस्व मजबूत होता जाता है। समाज लिंग के आधार पर कार्यों का बंटवारा करता है।

'जेंडर' सभ्यताओं की देन है। समाज ने जैविक लिंग के लिए 'भूमिकाएँ' तय कर दी। इन भूमिकाओं के पालन का दवाब सभी लिंगों पर रहता है। पितृसत्तात्मक समाज में यह जेंडर विभेद बहुत मजबूत हो जाता है। पुरुष को सबसे महत्वपूर्ण मानना और सत्ता का नियंत्रण उसके पास होना पितृसत्ता का मूल है। ऐसी व्यवस्था में पुरुष अन्य जेंडर पर अपना आधिपत्य बनाने का प्रयास करते रहता है।

लेकिन ऐसा नहीं है कि महिलाऐं सर्वथा शक्तिहीन ही रहती हैं। न तो सारे पुरुष सामाजिक सत्ता पर आधिपत्य रखते हैं और न ही सारी स्त्रियाँ सामाजिक सत्ता के बोझ तले दबी हैं। दोनों जेंडर के लोग सत्ता और शक्ति के मामले में एक दूसरे के खेमे में आते-जाते हैं।

जेंडर दायित्व एक ऐसा विषय है जो सामाजिक परंपरा से गहराई से जुड़ा होता है। लोककथाएं इन दायित्वों की स्थापना और अगली पीढ़ी में संचालन का काम करती है। जेंडर दायित्व के सन्दर्भ में पूर्वोत्तर की लोककथाएं दो विपरीत स्वर में दिख सकती हैं। कभी ये लोककथाएं पूर्णतः जेंडर आधारित दायित्व को थोपती हुई होती है, कभी कथाओं के पृष्ठभूमि में जेंडर-दायित्व सहज रूप से आ रहा होता है, वहीं ऐसी भी कथाएं हैं जो स्त्रियों के पक्ष को मजबूती से दिखाते हुए जेंडर-दायित्व और उसकी वर्जनाओं को

तोड़ रही हैं। पूर्वोत्तर की कुछ लोककथाएं स्त्रियों के जेंडर आधारित कार्यक्षेत्र के प्रचलित धारणा को चुनौती देती है। नागा समाज के बारे में मान्यता है कि स्त्रियों को पुरुषों के भाले को छूने की मनाही है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि युद्ध के क्षेत्र में महिलाओं की कोई भूमिका नहीं है। किन्तु लोककथा के माध्यम से आओ समाज ने इस धारणा को तोड़ते हुई इतिहास की भुला दी गई महिलाओं को इस कार्यक्षेत्र में उनके योगदान को उचित सम्मान दिला रही है।

'अध्याय 4. पूर्वोत्तर की लोककथाओं में निर्णय की प्रक्रिया (Decision Making') अध्याय में हमने निर्णय की प्रक्रिया के सन्दर्भ में पूर्वोत्तर की लोककथाओं का अध्ययन किया है। परिवार समाज की वह मूलभूत इकाई है जहाँ उत्पादन, प्रजनन, उपभोग और बच्चों के समाजीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत होती है। और यहीं से निर्णय लेने की प्रक्रिया का जटिल समीकरण बनता है। परिवार या समाज के स्तर पर निर्णय लेने की शक्ति संबंधित परिवार एवं समाज में सत्ता के स्वरुप को निर्धारित करती है। इन निर्णयों से परिवार के हर छोटे-बड़े विषय जुड़े होते हैं। परिवार या समाज के स्तर पर निर्णय लेने की शक्ति संबंधित परिवार एवं समाज में सत्ता के स्वरुप को निर्धारित करती है। इन निर्णयों से परिवार के हर छोटे-बड़े विषय जुड़े होते हैं।

'निर्णय की प्रक्रिया' में हमेशा दो से अधिक विकल्प शामिल होते हैं, यह कभी भी किसी एक के साथ नहीं लिया जा सकता है। इसके लिए दो से अधिक पक्षों का होना आवश्यक होता है। यदि केवल एक ही विकल्प है, तो कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता है।

पूर्वोत्तर की लोककथाओं में निर्णय की प्रक्रिया के कई स्वर सुनाई पड़ते हैं। स्त्रियों के पास पारंपरिक रूप से कुछ अधिकारों का न होना एक विचार का विषय है जिसे संबंधित समाज के लोगों को आपस में स्वयं संबोधित करना चाहिए। इसके साथ ही हमें यह समझना होगा कि समाज में नियम-कानून अक्षरशः पालन नहीं होते। औरतें भी पितृसत्ता के बीच अपने हितों को सुनिश्चित करने का प्रयास करती ही हैं। भले ही महिला दरबार या बैठक में न जाए लेकिन वह अपने पति या बेटे को घर के अन्दर अपनी बात बताती है। उनकी बात घर के पुरुषों के माध्यम से पहुँच जाती हैं. हमें निश्चित रूप से एक ऐसे समाज बनाने की ओर अग्रसर होना चहिये जहाँ जहाँ बराबरी हो, लेकिन समाज अपने साथ बहुत जटिलताएं समेटे हुए रहता है, ऐसे में हमें छोटी से छोटी उम्मीद की भी सराहना करनी चाहिए

'अध्याय 5. पूर्वोत्तर की लोककथाओं का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष' में हमने पूर्वोत्तर की लोककथाओं के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का अध्ययन किया है। इस अध्याय में हमने जेंडर के परिप्रेक्ष्य में पूर्वोत्तर की सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक अपेक्षाओं, आकाँक्षाओं का अध्ययन किया है। लोककथाएं किसी समाज की सांस्कृतिक विरासत होती हैं। हम जानते हैं कि लोक कथाओं का निर्माण समाज सामूहिक रूप से करता है अतः समाज के विभिन्न तत्वों की उपस्थिति लोक कथाओं में सहज रूप से होती है। लोक कथाएं पीढ़ी दर पीढ़ी वाचिक रूप से आगे बढ़ती है, इसलिए इसमें सामाजिक जीवन और संस्कृति का सहज चित्रण मिलता है। परिवार समाज के इकाई के रूप में समाज की सामूहिक संस्कृति का वाहक होता है। किसी समुदाय के पीढ़ियों में विकसित परंपराओं, जीवन पद्धति, लोकवृत्त आदि के द्वारा संस्कृति का निर्माण होता

है। यह संस्कृति समाज की ज्ञान परंपरा, दर्शन, जीवन दृष्टि, रूढ़ी एवं विश्वास आदि का परिचायक होती है। समाज और संस्कृति एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। यह सही है कि संस्कृति एक विशाल अवधारणा है जो अपने अंदर किसी समुदाय के अनेक पीढ़ियों से विचार ग्रहण करती निर्मित होती है। यह सतत परिवर्तनशील होती है।

पूर्वोत्तर भारत की सामाजिक पृष्ठभूमि के बारे में हम जानते हैं कि यह आज भी यहाँ सामूहिक जीवन पद्धति का प्रचलन है। इससे सामाजिक जीवन कि कुछ बेहद सकारात्मक पहलू देखने को मिल सकते हैं। जैसा कि हमने प्रथम अध्याय में देखा कि पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदाय सामूहिक जीवन पद्धति अपनाते हैं। अगर समाज में किसी एक परिवार में कोई कार्य हो तो पूरा समाज उस कार्य को अपना मानता है और उसमें अपनी भूमिका निभाता है। चाहे वह घर बनाना हो या फिर खेती में मदद। मरण-जन्म हो सभी एक दूसरे की मदद करते हैं और इस तरह से सामूहिक जीवन की प्रतिष्ठा होती है। इसका असर उस समाज की जीवन दृष्टि पर भी पड़ता है। लोग आत्म केंद्रित जीवन के बजाय सामूहिक जीवन पर अधिक देते हैं। जीवन जीने की यह पद्धति इन समाजों की संस्कृति को रूप देती है। आगे आने वाले पीढ़ियों को अपने जीवन दर्शन को सिखाने के लिए समाज लोक कथाओं, गीतों, नृत्यों, कहावतों, कलाओं आदि का सहारा लेती है।

पूर्वोत्तर की लोक कथाओं का एक बहुत महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि इन कथाओं में पूर्वोत्तर के समाज के ना सिर्फ दर्शन बल्कि इतिहास बोध कीजिए झलक मिलती है। लोग कथाओं के माध्यम से आदी, खासी, नागा एवं मिजो जैसे तमाम आदिवासी समुदायों की लोक कथाओं में अपने मूल आज इतिहास को याद रखने की कोशिश दिखती है।

किसी जेंडर के सामाजिक दायित्व अवधारणा समाज द्वारा तय किये गए आदर्शों और जिम्मेदारियों को विभिन्न जेंडर के लोगों द्वारा समुचित तरीके से निभाने में है। जेंडर का सामाजिक दायित्व इस लिए बेहद महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि समाज की सुरक्षा के अन्दर रहने के लिए किसी व्यक्ति को समाज के नियमों के अनुसार चलना पड़ता है।

मातृत्व की अवधारणा दुनिया के अधिकाँश समाजों में सबसे बड़ा जेंडर दायित्व लेकर आती है। समाज एक माँ के रूप में एक औरत पर दायित्वों का भारी बोझ डाल देता है। जो औरतें अपने व्यक्तिगत पसंद-नापसंद, सुख-चैन और आकाँक्षाओं को छोड़ कर माँ होने के सारे सामाजिक माँगें पूरी करती हैं समाज उन्हें प्रतिष्ठा और सम्मान देता है और जो इसमें असफल होती हैं उन्हें समाज खलनायिका मानता है।

पूर्वोत्तर में सौतेली माँओं के बारे में कई लोककथाएँ मिलती हैं। दुनिया के अधिकांश समाजों की तरह यहाँ भी सौतेली माँ के अत्याचार की कथाएँ बहुत प्रचलित है। लेकिन सगी माँ के द्वारा अपना जेंडर दायित्व न निभाने की कथा भी यहाँ मिलती है। मिज़ो समाज में ऐसी दो कथा का पता चलता है जिसमें माँ अपने बच्चे के प्रति जिम्मेदारी नहीं निभाना चाहती।

कहा जा सकता है कि पूर्वोत्तर की लोककथाओं के अध्ययन के दौरान हमें पूर्वाग्रहों से दूर होकर उनको उनकी दृष्टि से देखने की आवश्यकता है। जेंडर के परिप्रेक्ष्य में यहाँ की लोककथाओं में हर तरह के स्वर सुनाई देते हैं।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

आधार ग्रन्थ-हिंदी

रमणिका गुप्ता (अनुवाद), पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन मिथक एवं लोककथाएं' नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2013

Primary Sources-English

B. Lalthangliana, Culture And Folklore Of Mizoram, Publication Division, Ministry Of Information And Broadcasting Government Of India, New Delhi, 2005

B.B. Kumar, Folk-Lores & Folk-Lore Motifs, Omsons Publications, New Delhi, 1993

Bijoya Sawian, Khansi Myths, Legends & Folk Tales, Sanbun Publishers, New Delhi 2010

G.K. Ghosh, Fables And Folk Tales Of Nagaland, Firma Klm Private Limited, Calcutta, 1997,

K. Dhirendro Ramsiej, Kashi Philosophy Of Nature, Seven Huts Socio-Educational Association, Shillong, 2006

Kynpham Sing Nongkynrih, Around The Hearth, Khasi Legends, Penguin Random House, Mumbai, 2007

Lal Dena, Hamar Folk Tales, Scholar Publishing House, New Delhi, 1995

Laltluangliana Khiangte, Fpolktales Of Mizoram, L.T.L. Publications & Art & Culture Department, Mizoram, Guwahati, 1997

Obang Tayeng, Folk Tales Of The Adis, Mittal Publication, Delhi, 2003

R. Luikham, Naga Folk Tales, Select Books, New Delhi, 1983

Tamo Mibang, Indian Folktales Of North-East, Farsight Publishers & Distributors, Delhi 2002

Temsula Ao, The Ao Naga Oral Tradition, Haritage Publishing House, Dimapur, 1999

Verrier Elwin, India's North-East Frontier In The Nineteenth Century, Oxford University Press, Madras, 1959

Verrier Elwin, Myths Of The North-East Frontier Of India, Gyan Publishing House, Delhi 1958

Verrier Elwin, Philosophy For Nefa, Department Of Cultural Affairs, Directorate Of Research, Government Of Arunachal Pradesh, Itanagar, 1957

सहायक ग्रंथ-हिंदी :

उमा चक्रवर्ती (संपा.), नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2013

सेतु कुमार वर्मा, मैथिली एवं खासी लोककथाओं में स्त्री, एम.फिल. पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलाँग, 2016

शर्मा श्रीनाथ, 'जनजातीय समाजशास्त्र' मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 2005

Secondary Sources-English :

Anungla Zoe Longkumar, The many that I am Writing from Nagaland Zubaan, New Delhi, 2019

B Subbarao, Regions and Regionalism in India, Critical quest, New Delhi, 2011

Barnes L. Mawrie, The Khasis and Their Natural environment, Vendrame Institute Publications, Shillong, 2000

Barnes L. Mawrie, From maternal uncle to father, VIP, Malawi, Shillong, 2015

Bonita Aleaz, Emergent women Mizo women's perspectives, Mittal publications, New Delhi, 2005

Chatterji, N. The Earlier Mizo Society. Kolkata; Firma KLM Private Limited, 2008. Reprint.

Chingbiakmawi, Liandova Leh Tuaisiala And The Reality Of Traditional Mizo Society: A Study, Mizoram University Journal Of Humanities & Social Sciences (A National Refereed Bi-Annual Journal) Kol I Issue 2, Dec 2015

Chi-Kwan Ho, Gender-Role Perceptions: An Intergenerational Study On Asian-American Women, Nwsa Journal, Vol. 2, No. 4, The Johns Hopkins University Press, 1990

Daphne Spain, Gendered Spaces And Women's Status Author, Sociological Theory, Vol. 11, No. 2 (Jul., 1993), American Sociological Association

Desmond L. Kharmawphlang, Fogglore imprints in North East India, Don Bosco Publication DBCIC, Shillong, 2017

Dena, Lal. In Search of Identity: Hmars of North-East India. New Delhi: Akansha Publishing Housc, 2008. Print.

Gerda Lerner, The Creation Of Patriarchy, Oxford University Press, New York, 1986

G.K. Ghosh (Edit) Fables And Folktales Of Nagaland, Firma Klm Private Limited, Calcutta, 1997

Georges, Robert A. and Jones, Michael Owen. Folkloristics: An Introduction. USA: Indiana, University Press, 1995. Print. Guite, Chinkholian.

Gindu Borang, Changing social and cultural Institutions of Adi (padam) of Arunachal Pradesh, Himalayan publishers, New Delhi, 2013

H K Barpujari, Problem of the hill tribes North East Frontier, (Vol. I-II)North Eastern hill University publications, Shillong, 1970

H. Kelian Synrem, Revivalism in Khasi society, Sterling publishers Private Limited, New Delhi, 1992

Hamlet Bareh, The Language and literature of Meghalaya, Indian Institute of Advanced study Shimla, 1977

Huber And Spitze 1983 Quoted By Daphne Spain, Gendered Spaces And Women's Status, Sociological Theory, Vol. 11, No. 2, July 1993

Jecinta W. Khyriem, Proverbs of North-East India ,DBCIC publications, Shilong, 2010

JS Bhandari (Edt.), kinship and family in North East India Cosmo publications, New Delhi, 1996

John Samuel, Language And Nationality In North-East India, Economic And Political Weekly, Vol. 28, No. 3/4 (Jan. 16-23, 1993)

Lalneihzovi, Changing status of women in North Eastern states Mittal Publication New Delhi

Lucy Zehol, Women in Naga society, Regency publications, New Delhi, 1998

Marco Mitri, The North East umbrella, DBCIC publications, Shillong, 2011

Margaret Ch. Trans Zama, "Liandova And Tuaisiala." In The Oxford Anthology Of Writings From North East India: Fiction. Edited Bytillotoma In Misra.. New Delhi: Oxford University Press, 2011. 219-228

Margaret Mead: Human Nature And The Power Of Culture, Papua New Guinea: Sex And Temperament, The library of the Congress https://www.loc.gov/exhibits/mead/field-sepik.html

Mazharul Islam, Folklore the pulse of the people In the context of indic forklore, Concept publishing company, New Delhi, 1985

Moamenla Amer, Women's Plotical Status and Engagement, Akansha Publishing House, New Delhi, 2012

N. Venuh, Naga society continuity and change, Shipra Publication Delhi, 2002

Obang Tayeng, Folk Tales Of The Adis, Mittal Publication, New Delhi, 2003

Otem Pertin, Rethinking Tribal Institutions, Commonwealth, 2010

P. Thirumal, Modern Mizoram History, culture, poetics, Routledge, tailor and Francis group, 2019

P.R.T. Gurdon, The khasis, Akansha publishing house, New Delhi, 2012

Patricia Uberoi, Family, Kinship and marriage in India, Oxford University Press 1993

Patricia Mukhim, Where Is This North-East?, India International Centre Quarterly, Vol. 32, No. 2/3, Where The Sun Rises When Shadows Fall: The North-East (Monsoon-Winter 2005)

Phd Chapter 3, 1st Page Unavailable, Http://Shodhganga.Inflibnet.Ac.In/Bitstream/10603/76697/9/09_Chapter%203.Pdf

Qasim Hameedy, 'Sino-Indian War 1962–Where Do India And China Stand Today?' Http://Www.Dtic.Mil/Dtic/Tr/Fulltext/U2/A589875.Pdf

Roland Kharkrang, Matriliny on the March, Vendrame Institute publications, Shillong, 2012

Sachin Roy, Aspects Of Padam Miyong Culture, Directorate Of Research, Itanagar, 1960

Sindhu Phadke, Women's Status In North-Eastern India, Decent Books, Delhi, 2008

Soumen Sen, Morality and beyond North East Indian perspective, Sahitya Academy, 2007

Suman Sen, Folklore in North East India, Omsons publications New Delhi, 1985

Tamo Mibang, Folk culture and oral literature from North East India, Mittal Publications, New Delhi, 2004

Tamo Mibang, Marriage and culture, Mittal publications, New Delhi, 2006

Temjensosang, Self-governing Institutions of Nagas, Akanksha publishing house, New Delhi, 2013

Temsula Ao, The Ao-Naga Oral Tradition, Heritage Publication, Dimapur, 2012

Temsula Ao, On being a Naga essays, Heritage publishing house, Nagaland, 2014

Thomas Menamparampil, 'An Introduction To North-East India', Peace Centre, Guwahati, 2013

Tiplut Nongbri, Development ethnicity and Gender Select essays on tribes in India, Rawat publications New Delhi, 2003

Tiplut Nongbri, Gender And The Khasi Family Structure: Some Implication Of The Meghalaya Succession Act, 1984, Sociological Bulletin, Vol. 37, March-September, 1988

Toshimenla Jamir, Women and politics in Nagaland Challenges and imperatives, Concept Publication publishing Company Private Limited, New Delhi 2012

Verrier Elwin, A New book of Tribal Fiction, Directorate of research, Government of Arunachal Pradesh, Itanagar, 1970

William C Smith, The Aa-Naga Trive of Assam, Mittal publications, New Delhi, 2002

https://surveyofindia.gov.in/documents/polmap-eng-11012021.jpg

http://asc-india.org/menu/hazard.htm

http://www.mdoner.gov.in/content/ne-region

http://www.censusindia.gov.in/maps/state_maps/StateMaps_links/arunachal01.html

http://www.arunachalpradesh.gov.in/

http://dcmsme.gov.in/dips/state_wise_dips/STATE%20PROFILE%20OF%20ARUNACHAL%20%20PRADESH,%202015_14316.pdf

http://pbplanning.gov.in/pdf/Statewise%20GSDP%20PCI%20and%20G.R.pdf

http://www.censusindia.gov.in/2011census/maps/atlas/17part1.pdf

http://www.censusindia.gov.in/2011census/maps/atlas/17part1.pdf

http://www.censusindia.gov.in/2011census/maps/atlas/17part1.pdf

http://pbplanning.gov.in/pdf/Statewise%20GSDP%20PCI%20and%20G.R.pdf

http://meghalaya.gov.in/megportal/stateprofile

http://www.censusindia.gov.in/2011census/maps/atlas/15part1.pdf

http://www.censusindia.gov.in/2011census/maps/atlas/15part1.pdf

https://mizoram.gov.in/page/know-mizoram

https://www.nagaland.gov.in/portal/portal/StatePortal/AboutNagaland/NagalandInfo

http://www.censusindia.gov.in/2011census/maps/atlas/13part1.pdf

http://www.censusindia.gov.in/2011census/maps/atlas/13part1.pdf

http://pbplanning.gov.in/pdf/Statewise%20GSDP%20PCI%20and%20G.R.pdf

https://www.nagaland.gov.in/Nagaland/UsefulLinks/2.gender_composition.pdf

https://www.nagaland.gov.in/Nagaland/UsefulLinks/3.population%20density.pdf

परिशिष्ट

साक्षात्कार

लूसी जेहोल, शिलाँग, मेघालय, जनवरी 2018

तेम्सुला आओ, दीमापुर नागालैंड, दिसंबर 2019

यायी पादुंग, कायिंग, अरुणाचल प्रदेश, नवम्बर 2019

प्रकाशित शोध-पत्र :

International Journal of Social Science and Humanities

Indexed Journal, Refereed Journal, Peer Reviewed Journal

Online ISSN: 2664-8628, Print ISSN: 2664-861X, Impact Factor: RJIF 8

Publication Certificate

This certificate confirms that **सेतु कुमार वर्मा** has published article titled **पूर्वोत्तर भारतः नामकरण की पृष्ठभूमि**.

Details of Published Article as follow:

Volume	:	**4**
Issue	:	**2**
Year	:	**2022**
Page Number	:	**115-117**
Reference No.	:	**4-2-55**
Published Date	:	**24-12-2022**

Regards
International Journal of Social Science and Humanities
www.humanitiesjournals.com
humanities.submit@gmail.com
9999888931

International Journal of Social Science and Humanities
www.humanitiesjournals.com
Online ISSN: 2664-8628, Print ISSN: 2664-861X
Received: 21-11-2022, Accepted: 08-12-2022, Published: 24-12-2022
Volume 4, Issue 2, 2022, Page No. 115-117

पूर्वोत्तर भारतः नामकरण की पृष्ठभूमि

सेतु कुमार वर्मा
पीएच. डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना, भारत

सारांश
भारत एक विशाल देश है जहाँ साधारण व्यवहार में देश के किसी क्षेत्र का दिशात्मक नामकरण आम है, जैसे दक्षिण भारत, उत्तर भारत आदि। किन्तु पूर्वोत्तर भारत ही एक ऐसा क्षेत्र है जिसका दिशात्मक–नामकरण आधिकारिक रूप से किया गया है। इस शोध–पत्र में पूर्वोत्तर की भौगोलिक स्थिति, उपनिवेशी अतिक्रमण, नामकरण की पृष्ठभूमि और स्वतंत्र भारत में स्थिति का अध्ययन किया गया है।

मूल शब्दः पूर्वोत्तर भारत, दिशात्मक नामकरण, उपनिवेशवाद, आदिवासी, ट्राइबल, नस्लवाद, आदिवासी संघर्ष

भारत भौगोलिक स्थिति, संस्कृति, भाषा आदि के क्षेत्र में इतनी विविधतापूर्ण है कि इसके के बारे में सामान्यीकृत रूप से कुछ कहना मुश्किल हो जाता है। भारत में हजारों भाषाएँ, कहीं आधुनिकता तो कहीं लोकजीवन, एक ही समय में दो अलग भौगोलिक परिवेश में अलग तरह का मौसम, कुछ बेहद अमीर बांकी बहुत गरीब जनता, सब कुछ है। अलग–अलग धर्म और परम्पराएं हैं, अलग विचार है, फिर भी एक और विचार है जो इस देश को जोड़े रखने के लिए ताकत और अधिकार देता है, वह है हमारा संविधान। भारत का संविधान हर नागरिक को बराबरी का हक देता है। संविधान हमें इस विविधता से उत्पन्न होने वाले अनचाहे तनाव को दूर करने की प्रेरणा और ताकत देता है।

वर्तमान[1] में राजनीतिक रूप से 28 राज्यों और 8 केंद्र शासित प्रदेशों वाला यह देश सांस्कृतिक रूप से बहुत विविधताओं के साथ जुड़ा हुआ है। विविधता किसी भूमि विशेष के समृद्धि का प्रतीक मानी जाती है। किन्तु एक बड़ी आबादी में संवेदनशीलता और समझदारी के अभाव में यह सांस्कृतिक विविधता कई बार अप्रिय घटनाओं की शिकार बनती है। इसका एक बड़ा कारण अपने देश के विभिन्न क्षेत्रों, संस्कृतियों एवं लोगों के बारे में अनभिज्ञ रहना भी कहा जा सकता है। लोगों को देश के अन्य भागों की भौगोलिक स्थिति के बारे में नहीं पता रहता है। वहाँ के लोग कैसे रहते हैं, कैसे दिखते हैं, क्या खाते हैं, कैसा बोलते हैं, अपने साथी नागरिक के बारे में ऐसी मूलभूत जानकारी भी हमारे देश में नहीं रहती है। आए दिन होने वाली नस्लीय हिंसा की घटनाएँ इस देश की विविधता पर एक बहुत बड़ा प्रश्नचिन्ह खड़ा कर देती है। अपने विस्तृत भूभाग में भारत अनेक संस्कृतियों को समाहित किये हुए है। अफ़सोस की बात यह है कि एक बड़ी आबादी इन संस्कृतियों की भौगोलिक स्थिति तक को नहीं जानती है। ऐसी अनभिज्ञता और उससे उपजे समस्याओं का शिकार हमारा शोध–क्षेत्र पूर्वोत्तर भारत भी है। इस शोध–पत्र में हम पूर्वोत्तर–भारत को 'पूर्वोत्तर' (North-East) कहे जाने के इतिहास की पड़ताल कर रहे हैं। पूर्वोत्तर के ऐसे नामकरण की पृष्ठभूमि क्या थी, उसके पीछे की मंशा क्या थी और इसके फलस्वरूप आज पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों के आम लोगों को किन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, ऐसे कुछ सवाल इस शोध कार्य के केंद्र में हैं।

'पूर्वोत्तर', आठ राज्यों का एक भौगोलिक सम्मुचय जो सांस्कृतिक, भाषिक और राजनीतिक रूप से अपने आप में वैसा ही विविधतापूर्ण है जैसा भारत की विविधता के बारे में कहा जाता है। पूर्वोत्तर भारत से तात्पर्य अरुणाचल प्रदेश, असम, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, सिक्किम और त्रिपुरा से है। भौगोलिक रूप से ये राज्य एक सम्मुच्य का निर्माण करती है जो भारत के राजनीतिक मानचित्र पर और भी विशेष हो जाती है क्योंकि एक स्थान पर इन राज्यों को शेष–भारत से जोड़ने वाली भारत की भूमि मात्र 20 किलोमीटर चौड़ी रह जाती है। राजनीतिक रूप से पूर्वोत्तर की स्थिति भारत के लिए बेहद महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील रही है। किन्तु भारत के राजनैतिक हलकों में लम्बे समय से पूर्वोत्तर के मुद्दे बड़ी मुश्किल से सुनाई देते हैं। खास कर अगर मुद्दा वहाँ के आम लोगों की हितों से जुड़ा हुआ हो। पूर्वोत्तर का अधिकांश भाग अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं से बंधा हुआ है। जिस पतले से भूभाग से पूर्वोत्तर शेष–भारत से जुड़ा हुआ है, उसे 'सिलीगुड़ी कॉरीडोर' के नाम से भी जाना जाता है, इसकी वजह से वाणिज्य–व्यापार, परिवहन आदि की सम्भावना सीमित हो जाती है। पिट्रिसा मुखिम लिखती हैं, "जिसे पूर्वोत्तर भारत कहा जाता है वह 2.55 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल का एक बड़ा भूभाग है जो देश के कुल क्षेत्रफल का महज 7 प्रतिशत भाग है। इस क्षेत्र की मात्र 2 प्रतिशत सीमा भारत के साथ साझा है, बांकी 98 प्रतिशत सीमा बांग्लादेश, भूटान, म्यांमार, नेपाल और चीन जैसे देशों से लगी हुई है।"[2] इसके कई सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पूर्वोत्तर के राज्यों पर देखने को मिलते हैं जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। 269179 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैले पूर्वोत्तर भारत में 200 से अधिक आदिवासी, गैर–आदिवासी समुदाय रहते हैं।[3] पूर्वोत्तर भाषिक रूप से बेहद समृद्ध और विविधतापूर्ण है। अलग–अलग समुदायों द्वारा विभिन्न भाषा परिवारों की करीब 420 भाषा एवं बोलियाँ यहाँ बोली जाती हैं।[4] यहाँ भाषाई विविधता ऐसी है कि कई बार एक ही मुख्य समुदाय के अन्दर के विभिन्न उप–समुदाय के लोग एकदूसरे की भाषा को नहीं समझ पाते हैं। पूर्वोत्तर में तिब्बती–बर्मन, एस्ट्रो–एशियाई, इंडो–यूरोपियन जैसी तमाम भाषा परिवार की भाषाएँ जीवित हैं। यह भाषावैज्ञानिक विविधता पूर्वोत्तर को बहुत ख़ास बनाती है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत विश्व के सबसे विविधतापूर्ण क्षेत्रों में आता है। सांकृतिक दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत बेहद समृद्ध है। यहाँ आदिवासी एवं गैर–आदिवासी दोनों समुदायों की समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा देखने को मिलती है। पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों का जीवन पीढ़ियों में विकसित लोकसंस्कृति द्वारा संचालित होता है। पूर्वोत्तर के आदिवासी

समुदायों पर पड़ने वाले तमाम बाहरी प्रभावों के बावजूद इनकी लोकसंस्कृति के मुख्य तत्व आज भी जीवन और व्यवहार से जुड़े हुए हैं।

भारत एक विशाल एवं विविधतापूर्ण देश है। हिमाच्छादित पहाड़, पठार, सघन वन, द्वीप समूह, मरुस्थल, नदियों के विशाल मैदानी भूभाग से लेकर बेहद लंबी समुद्रतटीय सीमा भारत को भौगोलिक दृष्टि से सबसे विविधतापूर्ण देशों की श्रेणी में ले आती है। भौगोलिक विविधता के साथ ही भारत सांस्कृतिक, भाषिक और सामाजिक विविधताओं की दृष्टि से भी विशिष्ट है। लेकिन राजनीतिक रूप से आधुनिक राष्ट्र–राज्य के नियमों के अधीन पूरे भारत की विविधताओं को समेट कर, सबके साथ समान न्याय और व्यवहार करते हुए आगे बढ़ना एक चुनौती का विषय रहा है। यहाँ सत्ता कुछ क्षेत्र एवं समुदायों के पास केन्द्रित रही है, जिसके फलस्वरूप भारत के कई समुदाय और क्षेत्र हासिये पर चले गए हैं। इसके साथ ही भारत के विभिन्न क्षेत्रों को केंद्र के परिप्रेक्ष्य में देखने की जिस प्रक्रिया की शुरुआत ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के समय शुरू हुई थी, स्वतंत्रता के बाद भी वह चलती रही। भारत के उत्तरी हिस्से के कई राज्यों को उत्तर भारत कहा जाने लगा तो दक्षिणी हिस्से को दक्षिण भारत। लेकिन दक्षिण भारत या उत्तर भारत की अपेक्षा पूर्वोत्तर (North-East) भारत एक ऐसा भौगोलिक क्षेत्र है जो अधिकारिक रूप से संगठित और नामित क्षेत्र है।[5]

इस क्षेत्र के लिए पूर्वोत्तर शब्द के उपयोग का शुरुआती प्रमाण एलेग्जेंडर मेकेंजी (Alexander Mackenzie) की लेखनी में मिलता है। मेकेंजी ने 1869 ई में "Memorandum on the North-East Frontier of Bengal" लिखी। इस रिपोर्ट में वर्तमान पूर्वोत्तर के कई आदिवासी समुदायों के साथ ब्रिटिश सत्ता के संबंध, चुनौती और भविष्य की नीतियों पर सुझाव दिए गए हैं। इसके बाद मेकेंजी ने 1884 ई में "History of The Relations of Government with the Hill Tribes of the North-East Frontier of Bengal" लिखी। इसकी भूमिका में उन्होंने उल्लेख किया है कि 1835 ई में कैप्टन आर बोइलेउ पेम्बरटन (Capt R Boileau Pemberton) के "Report On Eastern Frontier Of British India" के बाद असम, चचार और चिटगांव के पहाड़ी पर रहने वाले आदिवासियों के सरकार के साथ राजनीतिक संबंध पर कोई सर्वे नहीं हुआ था। ऐसे में उनका 'मेमोरेंडम' स्थानीय सरकारों और भारत सरकार के विदेश विभाग के लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ।[6] पेम्बरटन और मेकेंजी ने कमोबेश एक ही भौगोलिक क्षेत्र के आदिवासी समुदायों के संबंध में लिखा है लेकिन इसके लिए जहाँ पेम्बरटन 'पूर्वी सीमांत' (Eastern Frontier) शब्द का उपयोग किया है वहीं मेकेंजी ने 'पूर्वोत्तर सीमांत' (North-East Frontier) शब्द का प्रयोग किया है। इसका कारण दोनों के कार्यक्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में इन समुदायों का अध्ययन हो सकता है। पेम्बरटन ब्रिटिश भारत के परिप्रेक्ष्य में इन समुदायों की भौगोलिक स्थिति देख रहे थे और मेकेंजी बंगाल प्रेसिडेंसी के परिप्रेक्ष्य में। किन्तु इस क्षेत्र के लिए मेकेंजी द्वारा उपयोग किया गया "North-East" शब्द चर्चित और धीरे–धीरे स्वीकृत हो गया। भारतीय उपमहाद्वीप में साम्राज्य स्थापित करने के बाद ब्रिटिश सत्ता ने कुछ क्षेत्रों के नामकरण में दिशात्मक स्थान–नामकरण (directional place-name)[7] का प्रयोग किया। इसके केंद्र से जो क्षेत्र दूर थे उनके लिए "Frontier" (सीमांत) शब्द का प्रयोग उन्होंने दो जगह किया। एक तरफ North West Frontier Province (NWFP) जो आज के पाकिस्तान का खैबर पख्तूनखवा प्रान्त है। वहीं दूसरी तरफ North-East Frontier Tract जो वर्तमान में लगभग संपूर्ण अरुणाचल प्रदेश और नागालैंड का कुछ हिस्सा है। ये सीमांत प्रदेश उनकी सत्ता के सीमा निर्धारण के लिए बेहद महत्वपूर्ण थे। स्वतंत्रता के बाद इस क्षेत्र के प्रति केंद्र सरकार और उसके जिम्मेदार अधिकारियों की राजनीतिक दृष्टि भी कमोबेश वैसी ही दिखती है। अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं और आंतरिक विरोध के अतिरिक्त भय से ग्रसित होकर इस क्षेत्र के प्रति ऐसे फैसले लिए गए और ऐसी नीतियाँ बनाई गई जो यहाँ के आम लोग के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली रही हैं। पूर्वोत्तर के आधिकारिक नामकरण के बारे में संजीव बरुआ लिखते हैं,

"'पूर्वोत्तर भारत' के आधिकारिक स्थान–नामकरण के पीछे उपनिवेशी सत्ता समाप्ति के बाद के भारत के प्रबंधकों द्वारा बेतरतीब और बिना सोचे–समझे लिया गया फैसला है। वे एक साम्राज्यवादी सत्ता के सीमांत क्षेत्र को एक 'सामान्य संप्रभु देश' का राष्ट्रीय क्षेत्र बनाना चाहते थे।"[8]

उस समय ब्रिटिश उपनिवेशी सत्ता पूर्वोत्तर के स्वतंत्र आदिवासी समुदायों को अपने नियंत्रण में करने के लिए अत्याचारी सैन्य दस्तों को भेज रहे थे। लेकिन उनकी अपेक्षा के विपरीत यहाँ उन्हें जबरदस्त प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। पूर्वोत्तर के विभिन्न भागों में आदिवासी योद्धाओं ने ब्रिटिश दस्ते के नेताओं को मार गिराया। एलेग्जेंडर मेकेंजी की लेखनी यूँ तो उपनिवेशी मानसिकता और उद्देशों से भरी हुई है लेकिन उसमें इन आदिवासी समुदायों के कड़े प्रतिरोध और साहस के प्रति भय और खीझ साफ़ देखी जा सकती है।[9]

इस क्षेत्र के लिए 'पूर्वोत्तर' संबोधन के अपने आप में कुछ सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव हैं जिनकी चर्चा आवश्यक है। अंग्रेजों के शासन के समय 'पूर्वोत्तर' संबोधन के मूल में उपनिवेशी नीतियाँ और अपेक्षाएँ समाहित थीं। किन्तु भारत की आज़ादी के बाद इस क्षेत्र के लिए 'पूर्वोत्तर' शब्द का उपयोग जारी रहा। यहाँ तक कि भारत सरकार द्वारा आधिकारिक रूप से भी कई ऐसे कानून और संस्थाएँ स्थापित किये गए जिनका नाम पूर्वोत्तर पर आधारित था। 1971 ई में पाकिस्तान से उसके पूर्वी सीमा पर युद्ध और विजय के कुछ ही दिन बाद भारत सरकार ने Northeastern Areas (Re-organization) Act 1971 और North Eastern Council Act जैसे कानून बनाये। जो क्रमशः नए राज्यों एवं केंद्र शासित प्रदेशों के गठन, विकास और सुरक्षा के मामलों में नीति एवं निर्देश के लिए थे। इसके अलावा भारत सरकार ने इस क्षेत्र के लिए एक मंत्रालय का भी गठन किया जिसे Union Ministry of Development of North-Eastern Region कहा जाता है। क्षेत्र में केन्द्रीय विश्वविद्यालय का गठन भी North Eastern Hill University (NEHU) के नाम से हुआ। इसके साथ ही क्षेत्र से दूर दिल्ली में जामिया मिल्लिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में The Centre for North East Studies and Policy Research और जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय में Special Centre for the Study of North East India जैसे विभाग इस क्षेत्र पर केन्द्रित अध्ययन के लिए खोले गए।[10] एक तरह से आठ अलग राज्यों को एक सम्मुचय के रूप में देखना आधिकारिक रूप से स्थापित हो गया।

पूर्वोत्तर के राज्यों को एक सम्मुचय के रूप में देखने से अक्सर यहाँ के विभिन्न राज्यों और उन राज्यों के भी विभिन्न समुदायों के मुद्दों, अपेक्षाओं और आकाँक्षाओं का सामान्यीकरण हो जाता है। पूर्वोत्तर के लोग अपने आपको अपने समुदाय के नाम से जानने के पक्ष में हैं। इसका उदाहरण देते हुए संजीव बरुआ ने लिखा है कि "पूर्वोत्तर के लोग अपने बारे में बात करते हुए सामान्यतः यह नहीं कहते कि 'एक नार्थईस्टनर होने के नाते मैं...।' बल्कि वे कहते हैं, 'एक मणिपुरी..., एक खासी..., एक नागा, होने के नाते मैं...'"[11]

भारत के शेष भागों में पूर्वोत्तर के लोगों के साथ होने वाले नस्लभेदी अपराधों से हम अवगत हैं। इस तरह के नस्लीय हमले करने वाले लोग पूर्वोत्तर के लोगों के रूप–रंग, खान–पान और अपनी पूर्वाग्रही धारणा के आधार पर करते हैं। उन्हें उनके राज्यों के अंतर के बारे में पता नहीं होता। ऐसे में पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों के लोग इस नकारात्मक परिस्थिति में अपने आपको एकदूसरे के साथ पाते हैं। और यह साथ एकजुटता को जन्म देता है। अपने–अपने क्षेत्रों में भले ही दो समुदाय और राज्यों के बीच संबंध थोड़े तनाव वाले हों लेकिन घर से दूर एक सामान्यीकृत हमलें का सामना करने के लिए सभी समुदाय के लोग एक साथ खड़े हो रहे हैं। इस तरह की एकजुटता को कई विद्वानों ने 'निगेटिव सॉलिडेरिटी' [12] का नाम दिया है।

पूर्वोत्तर के लोगों को एक व्यक्ति समूह के रूप में देखने के पीछे कहीं न कहीं नस्लीय प्रोफाइलिंग की धारणा भी काम करती है। पूर्वोत्तर के लोगों को उनके रूप–रंग के आधार पर एक समूह के रूप देखने का पूर्वाग्रह बेहद आम रहा है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पूर्वोत्तर के नामकरण का इतिहास उपनिवेशी शासन से जुड़ता है। अंग्रेजी उपनिवेशी अधिकारियों ने अपने रिपोर्टों में इस क्षेत्र के लिए सबसे पहले North-East (पूर्वोत्तर) शब्द का उपयोग किया। स्वतंत्रता के बाद भी भारत की केंद्र सरकारों और उनके अधिकारियों ने पूर्वोत्तर शब्द का उपयोग जारी रखते हुए इसे आधिकारिक नाम भी दे दिया। इस क्षेत्र पर लागू होने वाले कुछ कानून से लेकर सार्वजनिक शिक्षा संस्थान तक पूर्वोत्तर शब्द की स्थापना की है।

इस नामकरण का प्रभाव पूर्वोत्तर के आम लोगों पर देखा जा सकता है। सामान्यीकृत रूप से पूर्वोत्तर कहने से पूर्वोत्तर के आठ राज्य और उनके अनेकों समुदायों के मुद्दों को उभर कर आने का अवसर नहीं मिलता। किन्तु पूर्वोत्तर शब्द ने यहाँ के विभिन्न राज्यों के लोगों को शेष–भारत में उनके साथ होने वाले अन्यायों के खिलाफ एकजुट हो कर संघर्ष करने का अवसर दिया है।

संदर्भ सूची

1. दिसम्बर 2022 में भारत के 28 राज्य और 8 केंद्र शासित प्रदेश हैं। अक्तूबर, 2019 में संसद द्वारा जम्मू और कश्मीर के राज्य के दर्जे को ख़त्म कर 'जम्मू और कश्मीर' तथा 'लद्दाख' केंद्र शासित प्रदेश का गठन किया गया।
2. Patricia Mukhim, Where is this North-East, India International Centre Quarterly, Vol- 32 No- 2/3, Where the Sun Rises When Shadows Fall: The North-East (MONSOON-WINTER 2005), India International Centre, page 178.
3. https://indianculture-gov-in/north-east-archive/history-north-east
4. John Samuel, Language and Nationality in North-East India, Economic and Political Weekly, Vol- 28, No- 3/4 (Jan- 16-23,1993), page- 91, ''About 420 languages and dialects of different language families are used in a complex and wide-ranging ethno and socio-linguistic configuration in north-east India''
5. Sanjib Baruah, In The Name Of The Nation, India and Its Northeast, The Invention of Northeast India Standford University Press, Standford, California, 2020, Page 34.
6. Alexander Mackenzie, Memorandum on the North-East frontier of Bengal, Bengal Secratariet Press, Calcutta, 1869, page i
7. Sanjib Baruah, In The Name Of The Nation, India and Its Northeast, The Invention of Northeast India Standford University Press, Standford, California, 2020, Page 2
8. ibid
9. Alexander Mackenzie, Memorandum on the North-East frontier of Bengal, Bengal Secratariet Press, Calcutta, 1869
10. Deepak Kumar, What is in a Name - Northeast India, Armchair Journal, 2020, https://armchairjournal-com/what-is-in-a-name-northeast-india/
11. Sanjib Baruah, In The Name Of The Nation, India and Its Northeast, The Invention of Northeast India Standford University Press, Standford, California, 2020, Page 1
12. Duncan McDuie-Ra, Prof Subba ने इस विषय पर विस्तार से लिखा है। उनके विचार के केंद्र में भारत के शेष भागों में बसने वाले पूर्वोत्तर के प्रवासी नागरिक और उनके मुद्दे रहे हैं।

राष्ट्रीय संगोष्ठी शोध-पत्र प्रस्तुति प्रमाण-पत्र :

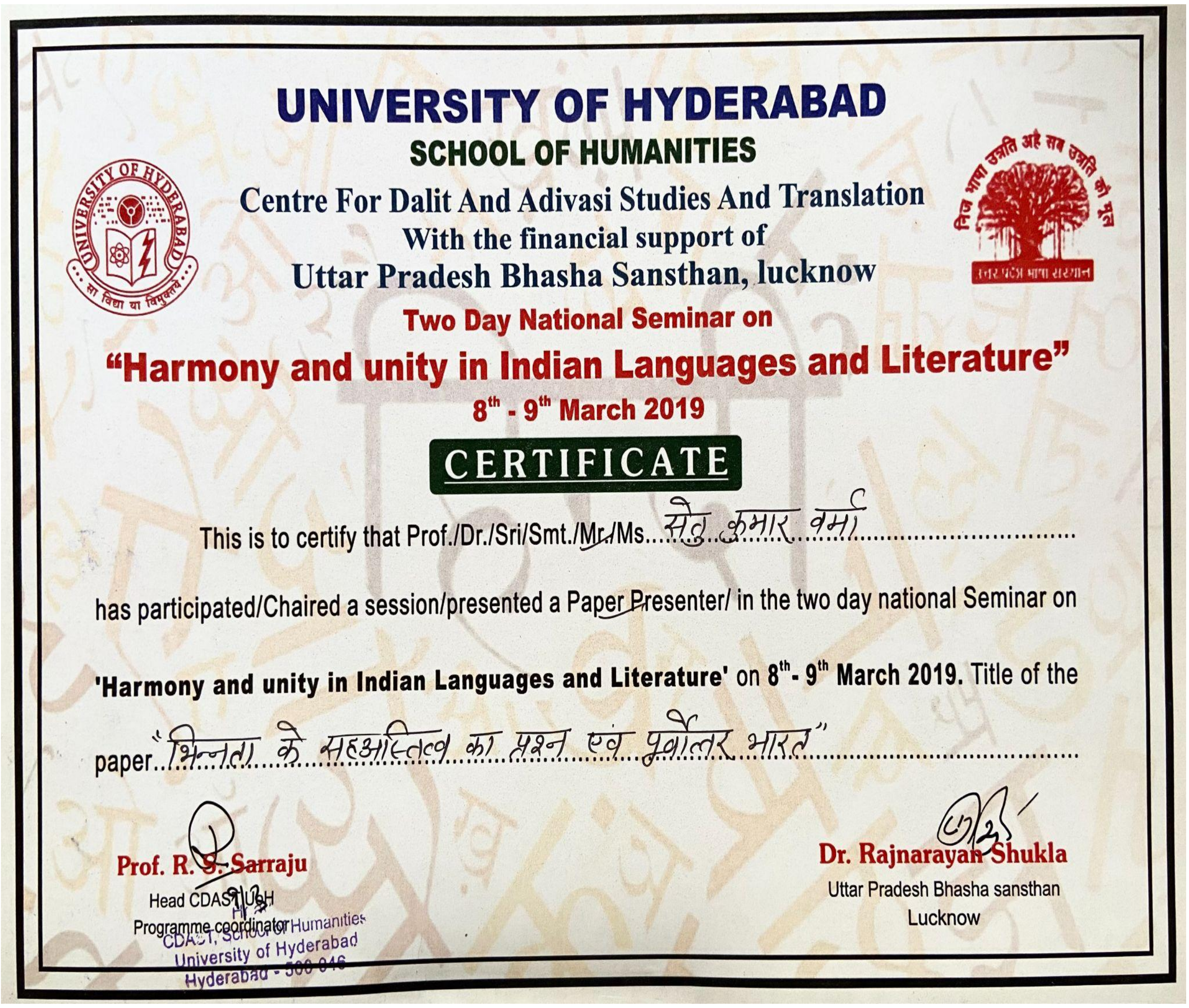

UNIVERSITY OF HYDERABAD

SCHOOL OF HUMANITIES

Centre For Dalit And Adivasi Studies And Translation

With the financial support of

Uttar Pradesh Bhasha Sansthan, lucknow

Two Day National Seminar on

"Harmony and unity in Indian Languages and Literature"

8th - 9th March 2019

CERTIFICATE

This is to certify that Prof./Dr./Sri/Smt./Mr./Ms. सेतु कुमार वर्मा

has participated/Chaired a session/presented a Paper Presenter/ in the two day national Seminar on

'Harmony and unity in Indian Languages and Literature' on 8th- 9th **March 2019.** Title of the

paper "भिन्नता के सहअस्तित्व का प्रश्न एवं पूर्वोत्तर भारत"

Prof. R. S. Sarraju
Head CDAST, UoH
Programme coordinator

CDAST, School of Humanities
University of Hyderabad
Hyderabad - 500 046

Dr. Rajnarayan Shukla
Uttar Pradesh Bhasha sansthan
Lucknow

University of Hyderabad

DEPARTMENT OF HINDI

CERTIFICATE

This is to certify that Prof./Dr./ Mr./Ms. सेतु कुमार वर्मा *has chaired / participated / presented a paper on the topic* पूर्वोत्तर की लोक कथाओं में जेंडर-दायित्व *in the National Seminar held on* 09/08/2019 *on* भारतीय जनजातियों के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक आयाम.

Coordinator

Head of the Department

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
Head, Department of Hindi
हैदराबाद विश्वविद्यालय
University of Hyderabad
हैदराबाद, Hyderabad-500 046.

AS PER THE UNIVERSITY POLICY, ANTI-PLAGIARISM SCREENING IS NOT REQUIRED FOR THE REGIONAL LANGUAGES

Librarian
Indira Gandhi Memorial Library
UNIVERSITY OF HYDERABAD
Central University P.O.
HYDERABAD-500 046.